॥ श्रीगदाधरगौराङ्गौ जयतः ॥

प्रमेयरत्नावली



श्रीमद्बलदेवविद्याभूषणविरचिता
श्रीकृष्णदेव सार्वभौमकृता कान्तिमालाटीकोपेता
महामहिमान्वित श्रील हरिरामव्यासरचितेन
"नवरत्नाख्येन" ग्रन्थेनालङ्कृता

-श्रीहरिदासशास्त्री

सङ्गणकसंस्करणं दासाभासेन हरिपार्षददासेन कृतम्

।। श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ।।

प्रमेयरत्नावली

श्रीमद्बलदेवविद्याभूषणविरचिता
श्रीकृष्णदेव सार्वभौमकृता कान्तिमालाटीकोपेता
महामहिमान्वित श्रील हरिरामव्याससरचितेन
नवरत्नाख्येन ग्रन्थेनालङ्कृता।

श्रीवृन्दावनधामवास्तव्येन
न्यायवैशेषिकशास्त्रिन्यायाचार्यकाव्यव्याकरणसांख्य
मीमांसावेदान्ततर्कतर्कन्यायवैष्णवदर्शनतीर्थ
विद्यारत्नाद्युपाध्यलङ्कृतेन
श्रीहरिदासशास्त्रिणा सम्पादिता।

सद्ग्रन्थ प्रकाशक :

श्रीहरिदासशास्त्री

श्रीगदाधर गौरहरि प्रेस
(श्रीहरिदास निवास)
प्राचीन कालीदह, वृन्दावन (मथुरा) उ. प्र.

प्रकाशक :
श्रीचैतन्य संस्कृति संस्था
(श्रीहरिदास निवास)
प्राचीन कालीदह, वृन्दावन (मथुरा) उ. प्र.
फोन : 0565–2442098, 2443965

प्रकाशन तिथि :
ॐ विष्णुपाद
श्रील विनोदविहारी गोस्वामिमहोदयस्य
तिरोभावतिथि:
पौष कृष्ण द्वितीया, दि० ६–१२–२००६
श्रीगौरांगाब्द : ५२१–५२२

तृतीयसंस्करणम्

मुद्रक :
श्रीगदाधर गौरहरि प्रेस
(श्रीहरिदास निवास)
प्राचीन कालीदह, वृन्दावन (मथुरा) उ. प्र.

।। श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्।।

विज्ञप्तिः

"प्रमेयरत्नावली" – नामक ग्रन्थ रचयिता श्रीमद् बलदेवविद्याभूषणपाद ने इस ग्रन्थ में श्रीमन्मध्वाचार्यजी को गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य रूप में प्रकाश कर तदीय स्वीकृत नव प्रमेय का विवेचन किया है, यह एक प्रकरण ग्रन्थ है, निज निर्मित वेदान्त–सूत्र के श्रीगोविन्दभाष्यस्थ प्रमेयनिकर का परिचय प्रदान करना ही इस ग्रन्थ का उद्देश्य है, उक्त नव प्रमेय इस प्रकार से हैं–(१) श्रीविष्णु परतम हैं, (२) सर्ववेद वेद्य हैं, (३) विश्व सत्य है, (४) जीव ईश्वर का भेद सत्य है, (५) जीव समूह नित्य श्रीभगवद् दास है, (६) साधनजनित फल से जीवों में तारतम्य होता है, (७) श्रीभगवद् चरण प्राप्ति ही मोक्ष है, (८) मोक्ष का कारण श्रीहरिः भजन है, (९) प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, प्रमाण है। इसमें नव अध्याय हैं, एक–एक अध्याय में एक–एक प्रमेय सोदाहरण लिपिबद्ध है, श्रीकृष्णदेव वेदान्तवागीश (सार्वभौम) कृत कान्तिमाला टीका एतत् सह मुद्रित है।

"प्रथम प्रमेय में"–श्रीकृष्ण परतम हैं, श्रुति–स्मृति के अनुसार उनका तारतम्य सुष्ठु निष्पन्न होता है, कारण आप ही सर्व हेतु हैं, विभु चैतन्य, सर्वज्ञ, आनन्दी, प्रभु सुहृद्, ज्ञानद, मोक्षप्रद एवं माधुर्य्यपूर्ण हैं, भगवान् में विभुत्वादि धर्मरूप भेद भान विशेष पदार्थ से होता है, यह भेद पाँच प्रकार से हैं, जिसे "भेद पंचक" कहते हैं, (१) ईश्वर जीव भेद, (२) जीव–जीव भेद, (३) जड़–जड़ भेद, (४) जड़ जीव भेद, (५) जड़ ईश्वर भेद। भगवान् नित्य लक्ष्मीकर्त्तृक सेवित होते हैं, पराशक्ति ही लक्ष्मी हैं, अपरा क्षेत्रज्ञाशक्ति, तृतीयाशक्ति, वहिरंगा है, पराशक्ति ही श्रीविष्णु की अभिन्ना है, इसका अपर नाम अन्तरंगा शक्ति है एवं आह्लादिनी, सन्धिनी, सम्वित् रूप में विराजित हैं।

श्रीविष्णु एवं श्रीलक्ष्मी के अवतार निकर में तुल्य पूर्त्ति विद्यमान होने से भी गुण प्रकटन के तारतम्य से अंशांशि भाव का व्यवहार होता है।

श्रीधाम का नित्यत्व स्वरूप, पार्षद एवं धाम की अनन्तता वशतः लीला भी नित्य है।

"द्वितीय प्रमेय में"—श्रीहरिः का अखिलाम्नाय वेद्यत्व है, वेदान्त साक्षात् रूप से एवं अन्यान्य वेद समूह परम्पराक्रम से श्रीहरिः वर्णन करते हैं। कुत्रचित् उनको वेदावाच्य कहा गया है, वह सम्यक् ज्ञानाभाव का प्रकाशक है, सर्वथा अवाच्य होने से उनको जानने के निमित्त जो वेदाध्ययनारम्भ है, वह निरर्थक ही होगा। उक्त ज्ञान स्वतः सिद्ध एवं भक्ति पद वाच्य है, ज्ञान परिशुद्ध होने से विषय एवं निर्विषयात्मक द्वन्द्व को परिहार करके भगवान् को लक्ष्य करता है, उनका अनुशीलन भी करता है। अतएव श्रीहरिः ही अखिल वेद वेद्य हैं।

"तृतीय प्रमेय में"—विश्व का सत्यत्व प्रतिपादित है, परिदृश्यमान विश्व सत्य, किन्तु नश्वर है, जहाँ असत्य कहा गया है—वैराग्य उत्पादन ही उसका उद्देश्य है, सृष्टि के पूर्व में जो असद् उक्ति है—वह वन में लीन विहंग के समान सूक्ष्म रूप से अस्तित्व का द्योतक है।

चतुर्थ प्रमेय में"—भेद सत्यत्व का निरूपण है। जीव एवं ईश्वर में काल्पनिक भेद नहीं है, किन्तु वास्तव भेद है, मुण्डकोपनिषद् (३।१।३) "परम साम्यं" कठ, उप, (४।१।१४) तादृगेव एवं गीता (१४।२) "मम साधर्म्य" इन सभी वाक्यों के द्वारा एवं मोक्ष में भी भेदोक्ति द्वारा भेद ही तात्त्विक है।

चिज्जड़ात्मक प्रपंच ब्रह्माधीन होने से जिस प्रकार वागादि इन्द्रिय को प्राणशब्द से कहते हैं, उस प्रकार इस प्रपंच को कभी (सर्वं खलु इदं ब्रह्म, तत्त्वमसि इत्यादि वाक्यस्थ) ब्रह्मशब्द से ब्रह्म रूप कहा जाता है।

कतिपय व्यक्ति कहते हैं–जगत् में ब्रह्म ही व्यापक रूप में विद्यमान है, जागतिक कोई भी वस्तु ब्रह्म शून्य नहीं हो सकती है, तज्जन्य जगत् में भी ब्रह्म शब्द का आरोप होता है।

"प्रतिबिम्बवाद में"–प्रपंचात्मक विश्व में जीव को ब्रह्म का प्रतिबिम्ब स्वीकार लेने से ब्रह्म, बिभु तथा निर्विशेष नहीं होगा, कारण–सीमाबद्ध एवं रूपवान् वस्तु का ही प्रतिबिम्ब होता है।

"परिच्छेदवाद में भी"–अपरिच्छिन्न ब्रह्म का परिच्छेद–असम्भाव्य है, परिच्छेद वास्तव होने से टङ्कच्छिन्न पाषाणखण्डवत् ब्रह्म का भी विकारित्व होना अवश्यम्भावी होगा। सुतरां मतद्वय ही सर्वथा अग्राह्य है।

"अद्वैतवाद में"–जीव, ब्रह्म का भेद अथवा अभेद है ? भेद स्वीकार करने पर द्वैतापत्ति, अभेद स्वीकार करने से "अहं ब्रह्मास्मि सर्वं खल्विदं ब्रह्म, तत्त्वमसि" इत्यादि श्रुतिवाक्य में सिद्धसाधनता दोष होगा। जो तत्त्व स्वयं अथवा श्रुति से सिद्ध होता है, उसका अन्य रूप प्रतिपादन की चेष्टा को सिद्धसाधन दोष कहते हैं, यहाँ "ब्रह्म सर्वव्यापक" "बिभु" इत्यादि वाक्य से ही जब अभेद सिद्ध होता है, तब उसका प्रतिपादन करने की चेष्टा क्यों ? निर्गुण ब्रह्म में रूपादि न होने से वह प्रत्यक्ष एवं अनुमान का गोचर नहीं हो सकता है, शब्द प्रमाणगम्य भी नहीं होगा, उसमें प्रवृत्ति निमित्त जाति, गुण, क्रिया नामादि की आवश्यकता है। "भागलक्षणा" भी सम्भव नहीं है, कारण, अभिधावृत्ति द्वारा अगम्य वस्तु ब्रह्म में लक्षणा की प्रवृत्ति होती ही नहीं। "सुतरां अद्वैतवाद सर्वथा ही अग्राह्य है।"

"पंचम में"–भगवद् दासत्व का वर्णन है, जीव–भगवद् दास ही है, ब्रह्मा, रुद्रादि देवगण श्रीहरिः की आराधना करते हैं, सुतरां भगवद् कैंकर्य्य ही जीव का स्वरूप है।

"षष्ठ में"–जीव तारतम्य वर्णित है, जीव–अणुचैतन्य, सीमित ज्ञान विशिष्ट, कर्मकर्त्ता एवं कर्मफल भोक्ता है, सब जीव ही समान

रूप से उक्त धर्म विशिष्ट होने पर भी कर्म तारतम्य से ऐहिक एवं भक्ति तारतम्य से पारत्रिक फल तारतम्य वशतः जीवों में अवश्य पार्थक्य स्वीकृत है।

"सप्तम में"—"श्रीकृष्ण पादपद्म लाभ ही मोक्ष है।" स्वयं प्रभु श्रीकृष्ण की उपासना से ही नित्यसुख की प्राप्ति होती है।

"अष्टम में"—अमल श्रीकृष्ण भजन से ही मोक्ष होता है। निष्काम भक्ति के आचरण से मोक्ष लाभ होता है, नवधाभक्ति—श्रवण, कीर्तनादि, सत्सेवा एवं श्रीगुरुसेवा की आवश्यकता है। तापादि पंचसंस्कारी, वैधी एवं रागानुगा भजनाधिकारीजन ही श्रीहरिः साक्षात्कार के योग्य हैं। दशविध नामापराध वर्जनपूर्वक ज्ञान, वैराग्य सम्पन्न एकान्त भक्ति भावित होने से ही पुरुषार्थ प्राप्ति अवश्यम्भावी है।

"नवम में"—प्रमाणत्रय का वर्णन है। तीन प्रकार प्रमाण, प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द ही ग्राह्य है, ऐतिह्य प्रमाण—प्रत्यक्ष के अन्तर्भूत है। प्रत्यक्ष एवं अनुमान में व्यभिचार दृष्ट होने से शब्द प्रमाण ही सर्वप्रमाण शिरोमणि है।

श्रीचैतन्यदेव के मत, उक्त नव प्रमेय का ही अनुगत है। किन्तु प्रथम, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम एवं नवम प्रमेय में उत्कर्षमूलक किंचित् तारतम्य है।

श्रीमध्व मत में—	**श्रीचैतन्य मत में—**
(१) श्रीहरिः शब्द से वैकुण्ठादि धामादि नायक का बोध	श्रीहरिः शब्द से ब्रजेन्द्रनन्दन ही वाच्य है।
(४) श्रीविष्णु से जीव सर्वथा भिन्न है।	भेद एवं अभेद—अचिन्त्य है अर्थात् श्रुति प्रतिपादित है।
(७) श्रीविष्णु पादपद्म लाभ ही मोक्ष है।	प्रेम ही पंचम पुरुषार्थ मोक्ष है।

(८) भक्ति ही मोक्ष का हेतु है।	ब्रजबधूगण कल्पिता रम्या उपासना ही मोक्षरूप प्रेम का हेतु है।
(९) प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द प्रमाण है।	शब्द प्रमाण वेद अथवा तत्स्वरूप श्रीमद्भागवत पुराण ही प्रमाण है।

एतद्व्यतीत प्रमेय चतुष्टय का अंगीकार श्रीचैतन्यदेव ने यथायथ रूप से किया है–

आराध्यो भगवान् ब्रजेश तनयस्तद्धाम वृन्दावनम्।
रम्याकाचिदुपासना ब्रजबधूवर्गेण या कल्पिता।।
शास्त्रं भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्।
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः।।

श्रीनाथचक्रवर्तीकृत श्रीचैतन्यमत–मंजूषा के वचन में भी चतुर्थ प्रमेय व्यतीत १वाँ, ७वाँ, ८वाँ, ९वाँ प्रमेय सोत्कर्ष से स्वीकृत हुए हैं।

श्रीमध्व मत में अचिन्त्य भेदाभेदवाद की संगति कैसे होगी ? **कारण निर्देश**–भेद अथवा अभेद निर्णय में प्रत्यक्ष, अनुमान शब्द को प्रमाण रूप में अवलम्बन करना होगा। प्रत्यक्ष प्रमाण में–प्रतियोगी, अनुयोगी का प्रत्यक्षत्व आवश्यक है, भेद की अवधि को प्रतियोगी एवं भेद के आश्रय को अनुयोगी कहते हैं, घट, पट से भिन्न है, यहाँ पट प्रतियोगी एवं घट अनुयोगी है, घट, पट के परस्पर भेद को प्रत्यक्ष करने के निमित्त घट, पट का प्रत्यक्ष होना आवश्यक है। प्रत्यक्ष प्रमाण, दृश्य वस्तु में सफल होता है, किन्तु अप्रत्यक्ष रूप परमाणु में अयोग्य होता है, अतएव उक्तस्थल में भेदज्ञान भी पराहत है। भेदज्ञान में अनुमान भी योग्य नहीं है, अनुमान–प्रत्यक्ष मूलक है। प्रत्यक्ष का व्यभिचार होने से उससे उत्पन्न अनुमान सुतरां अयोग्य होगा। शब्द प्रमाण भी भेदज्ञान बोधक ज्ञान है, कारण–शब्द, सामान्याकार से संकेत विशिष्ट होकर सामान्याकार से ही अर्थ का

द्योतक होता है। मधुर शब्द के उच्चारण से मधुर गुणयुक्त यावतीय वस्तु का स्मरण होने से भी माधुर्य्यगुण व्याप्य विशेष धर्मयुक्त गाढ़ मधुर तरल मधुर रूप एक–एक वस्तु की उपस्थिति नहीं होती है। पदार्थ अनेक होने से किसी एक विशेष पदार्थ में शब्द का संकेत नहीं होता है, उस प्रकार जीव अनेक होने से किसी भी जीव विशेष में शब्द का संकेत नहीं होता है, सुधीगण के मत में शब्द का संकेत जाति द्रव्य गुण क्रिया में ही होता है।

पक्षान्तर में–घट न होने से घटाभाव नहीं होता है, "है" ज्ञान न होने से "नहीं" ज्ञान नहीं होता है, तद्रूप भेदज्ञान न होने से अभेदज्ञान नहीं होता है, सुतरां अभेदज्ञान सर्वतोभावेन भेदज्ञान में आधारित है। अभेद का उपजीव्य भेदज्ञान निर्णय में प्रमाणत्रय निरस्त होने से अभेद सम्बन्ध में भी वही अवस्था है।

इस समस्त पदार्थगत गम्भीरतम तत्त्व का विचार से दृष्ट होता है कि मात्र भिन्नत्व अथवा अभिन्नत्व द्वारा विचारकर वस्तु तत्त्व का निर्णय करना दुःसाध्य है। अनिवार्य कारण से ही वस्तु में शक्ति विशेष को स्वीकार करना आवश्यक है, जब उस शक्ति की प्रतीति, स्वरूप से अभिन्न न होने से भेद, भिन्न नहीं है, अतः अभेद भी नहीं होती है। अतएव उक्त शक्ति एवं शक्तिमान् में भेदाभेद अवश्य ही स्वीकार्य है, वह अचिन्त्य है। सुतरां श्रीमन्मध्वाचार्य के भेदवाद के अनुसरण से ही श्रीचैतन्य मत में अचिन्त्य भेदाभेद का अवतरण हुआ। मृत्यु जिस प्रकार जन्मापेक्षी है, उस प्रकार अभेद भी भेदापेक्षी है, अतएव श्रीमध्वमतीय भेद की अपेक्षा से अभेदवाद का अवतरण हुआ और सुपरिष्कृत होकर चैतन्य के द्वारा अचिन्त्य भेदाभेद नाम से प्रकाशित हुआ, "अतर्क्य सहस्र शक्तिः" (भा० ३।३३।३) अचिन्तानन्त शक्तिशाली परतत्त्व के शक्ति समूह एवं शक्तिपरिणति वस्तु समूह के सहित उक्त परतत्त्व का जो अचिन्त्य (अपौरुषेय शब्दगम्य किन्तु पुरुष अर्थात् जीव की क्षुद्र चिन्ताशक्ति अथवा युक्ति का अगम्य है, युगपद् भेद एवं अभेदयुक्त सम्बन्ध–वह ही अचिन्त्य भेदाभेदवाद है।

भेद एवं अभेद की सहस्थिति तथा उभय ही समभाव से सत्य एवं नित्य है, यह अबोध्य, अचिन्त्य होने से मानवीय युक्ति–धारणा द्वारा प्रतीयमान न होने से भी शास्त्रोपदिष्ट हेतु अवश्य स्वीकार्य है।

नीलाचल में–श्रीवासुदेव सार्वभौम भट्टाचार्य के निकट काशी में केवलाद्वैतवादी प्रकाशानन्द सरस्वती के निकट एवं श्रीसनातन गोस्वामीपाद को लक्ष्य करके उक्त सिद्धान्त का प्रकटन श्रीचैतन्यदेव ने किया था।

अनन्तर श्रीसनातन–'बृहद्भागवतामृत' (२।२।१८६) वैष्णवतोषणी में एवं श्रीरूप गोस्वामीचरण–'लघुभागवतामृत' में एवं श्रीजीव गोस्वामीपाद ने–'षट्सन्दर्भ', 'सर्वसम्वादिनी' में उक्त कथन का विस्तार किया है।

'ब्रह्मसूत्र' (२।१।२४,२८) में परतत्त्व का शक्तिमत्त्व एवं शक्ति का अचिन्त्यत्व उक्त है।

श्रीजीव गोस्वामीपाद ने श्रीमद्भागवतोक्त अद्वय तत्त्ववाद 'एकमेवाद्वितीयम्' तत्त्व की अचिन्त्य अद्वितीया स्वरूपानुबन्धिनी शक्ति का वैचित्र्य को मानकर अति सूक्ष्मतम विचार विश्लेषण के द्वारा उक्त वाद को प्रतिष्ठित किया है। आपने श्रीमद्भागवत के 'वदन्ति तत्तत्त्व का अद्वयत्व स्थापन किया है, (भ०सं० १६)।

एक अद्वितीय परतत्त्व ही स्वाभाविकी अचिन्त्य शक्ति द्वारा सर्वदा **भगवत्स्वरूप, स्वरूपवैभव, जीव, प्रधान,'** चतुर्धाम विराजमान हैं, आपके मत में जीव एवं प्रकृति तत्त्व नहीं है, उसको शक्ति मानकर ही परतत्त्व का अद्वयत्व स्थापन आपने किया है, (क्रम सं० १।२।१२, तत्त्वसंदर्भ ५१, भगवद्संदर्भ १६, भक्तिसंदर्भ ६, ७)।

परतत्त्व को निःशक्तिक, निर्विशेष कहने से सर्वशक्तिमान् की पूर्णता हानि होती है, तज्जन्य आप सशक्तिमान् परतत्त्व को ही परब्रह्म कहते हैं, जो स्वयं बृहद् जिनमें अपर को बृहद् करने की शक्ति स्वरूपानुबन्धिनी है, वह ही ब्रह्म है।

अद्वयतत्त्व की सच्चिदानन्दता हेतु शक्ति भी अद्वितीया सच्चिदानन्दात्मिका है, वह त्रिविध वैचित्र्यपूर्ण है—'सन्धिनी, सम्वित्, ह्लादिनी (भ०सं० १०२), शक्ति की क्रिया से ही ब्रह्म का सविशेषत्व है।

ब्रह्मशक्ति प्रकार द्वय से अवस्थित है, (१) मात्र शक्तिरूप में अमूर्त्त, (२) शक्ति की अधिष्ठात्री रूप में मूर्त्त। श्रीभगवद्धाम, श्रीभगवद् परिकरगण स्वरूपशक्ति की वृत्ति विशेष हैं। शक्ति समूह अमूर्त्तरूप में श्रीभगवद् विग्रह के सहित एकात्म होकर रहती है और मूर्त्तरूप में श्रीभगवद् परिकरादि होकर प्रकट होती है, (भ०सं० १०२)।

परतत्त्व की स्वरूपशक्ति ह्लादिनी परतत्त्व में अवस्थान करती है, जिस समय परतत्त्व रसास्वादन के निमित्त उस ह्लादिनी शक्ति की सर्वानन्दातिशायिनी वृत्ति को उनके ही शक्त्यंशस्वरूप भक्तगण के हृदय में संचारित करते हैं, उस समय वह वृत्ति कृष्ण प्रीतिरूप में वैचित्री प्राप्तकर परमास्वादन चमत्कारिता होती है, (प्रीति सं० ६५)।

भक्ति भक्तकोटि में प्रविष्ट, भक्त एवं भगवान् को विगलनकारिणी शक्ति विशेष है, (भक्ति सं० १८०)।

अतएव सम्बन्धितत्त्व, अभिधेयतत्त्व एवं प्रयोजनतत्त्व में अद्वितीया सच्चिदानन्दात्मिका स्वरूपशक्ति की वैचित्री एवं विलास को श्रीजीवप्रभु मानते हैं। आपके मत में—सम्बन्धितत्त्व एक अद्वितीय है, वह उपासक के प्रतीति भेद से ब्रह्म, परमात्मा एवं भगवद्स्वरूप में आविर्भूत अद्वय ज्ञानतत्त्व है। अद्वय हेतु सजाति—विजातीय स्वगत भेद शून्य है अर्थात् परतत्त्व के देह—देही, प्रकाश, विलास वैभव के मध्य में जड़ीय भेद नहीं है। कारण वह स्वरूपशक्ति द्वारा संघटित है, प्रकाश—विलास प्रभृति में मात्र शक्ति प्रकटन के तारतम्य से लीला वैचित्री होती है।

उस अद्वयतत्त्व प्राप्ति का उपाय भी अद्वितीय स्वरूपशक्ति की वृत्ति अर्थात् भक्ति है, भक्ति विशेष ही परमात्मानुशीलन अथवा योग है। भक्ति से ज्ञान को पृथक् देखने पर (भा० १।५।३५) "ज्ञानं यत्तदधीनं हि भक्तियोग समन्वितम्" इस सिद्धान्त का विरोध होगा और ज्ञान को स्वतन्त्र अभिधेय मानने से मात्र क्लेश लाभ ही होगा, (भा० १।५।१२, १०।२।३२–३३, १०।१४।३), परतत्त्व श्रीकृष्ण यथा ब्रह्म परमात्मा का आश्रय है, (भा० १।२।६–२२,२८,२६, १।५।२२–३२,३६) तथा श्रीकृष्णभक्ति भी ज्ञान–कर्मयोग का आश्रय है।

प्रयोजनतत्त्व भी अद्वितीय है 'कैवल्यैक प्रयोजनम्' केवल प्रीति अथवा विमुक्ति ही प्रयोजन है। तदन्तर्गत ही योगी का कैवल्य एवं ज्ञानी की मुक्ति है, कैवल्य एवं मुक्ति के निमित्त स्वतन्त्र चेष्टा ही कैतव है।

गौड़ीयदर्शन में शक्ति एवं शक्तिमान् मिलित रूप ही एक अखण्ड अद्वय वस्तु व तत्त्व है, अतीन्द्रिय तत्त्व तथा तच्छक्ति का अलौकिकत्व निरूपण में 'अचिन्त्य' शब्द प्रयोग केवल गौड़ीयदर्शन में ही है।

आचार्य श्रीशंकर ने भी अचिन्त्य शक्ति परब्रह्म को 'अचिन्त्य (श्रीविष्णुसहस्रनाम १०२) शब्द से विभूषित किया है।' 'प्रमाणादि साक्षित्वेन सर्वप्रमाणागोचरत्वादचिन्त्यः। अयमीदृशः इति विश्व प्रपंच–विलक्षणत्वेन चिन्तयितुमशक्यत्वाद् वा अचिन्त्यः' श्रीधरस्वामी विष्णुपुराण की टीका (१।३।१–२) एवं श्रीजीव गोस्वामी के मत में (भ०सं० १६) अचिन्त्य शब्द का अर्थ–शब्दमूलक श्रुतार्थापत्ति ज्ञान गोचर है।

शक्ति–भक्तिमान् में (केवल भेद–अभेद, एतद् उभय साधन ही दुष्कर है एवं युगपद् भेद एवं अभेद साधन की संगति भी एकमात्र परतत्त्व की अविचिन्त्य शक्तिमत्ता व श्रुतार्थापत्ति प्रमाण व्यतीत सम्भव नहीं है, अतः श्रीचैतन्य मत में अचिन्त्य शब्दगम्य भेदाभेदवाद स्वीकृत हुआ है।

पौराणिक, शैवगण एवं भास्कराचार्य प्रभृति ने जिस भेदाभेदवाद को स्वीकार किया है, वह मात्र तर्कमूलक हेतु खण्डन योग्य एवं परस्पर संगति विहीन है।

मायावादियों के केवल अभेदवाद में भी भेदांश व्यवहारिक व प्रातीतिक मात्र है, तत्र सद्सद्निर्वचनीयत्व के अन्तराल में माया का अस्तित्व मानने से अद्वैत हानि होती है। ब्रह्म में उभय लिंग मानने से भी ब्रह्म द्विभावग्रस्त हो गये हैं। वह शब्द प्रमाण से प्रमाणित नहीं है, तर्कपर है, स्वकपोलकल्पितमात्र है।

गौतम, कणाद, जैमिनि, कपिल, पतंजलि के मत में भेदवाद स्वीकृत होने से भी वह वेदान्त सम्मत नहीं है।

श्रीरामानुज–शक्ति शक्तिमान् में भेद स्वीकार करते हैं, उनके मत में सर्वकारण समूह का कारणत्व निर्वाहक किसी अद्रव्य विशेष ही शक्ति है। यह धर्म विशेष अथवा वृत्ति विशेष है। शक्तिमद् भगवन्निष्ठ धर्म विशेषो भगवच्छक्तिवाच्यः (यतीन्द्रमतदीपिका १०वाँ)।

परब्रह्म की शक्ति–सनातन व स्वाभाविक है। शक्ति–शक्तिमान् में भेद है, किन्तु शक्ति स्वरूपानुबन्धिनी है, (श्रीभाष्य २।१।१५), श्रीरामानुज को प्रकारान्तर से द्वैतवादी कहा जा सकता है।

मध्वाचार्य, तत्त्व समूह में अत्यन्त भेद मानते हैं, स्वतन्त्रतत्त्व ईश्वर से परतन्त्रतत्त्व समूह का नित्य भेद है, जीव–ईश्वर में, जीव–जीव में, ईश्वर जड़ में, जीव जड़, जड़ में ये पंचभेद व द्वैत नित्य, सत्य एवं अनादि है, (तत्त्व विवेक)।

श्रीमध्वाचार्य तो द्वैतवादी हैं ही, किन्तु गौड़ीय वैष्णव सिद्धान्त में परतत्त्व का अचिन्त्य शक्तित्व एवं शक्ति–शक्तिमान् में श्रुतार्थापत्ति प्रमाणगम्य अचिन्त्य भेदाभेद सिद्धान्त ही स्वीकृत है, (मुण्डकोप० ३।२।८) 'यथानद्यः स्यन्दमानाः, (प्रश्नोप० ६।५) यथेमानद्यः स्यन्दमानाः एवं (वृ०भा० २।२।१६६) के अनुसार जिस प्रकार समुद्र

के एक देश से अद्भुत तरंग एकांश में लीन होती है। उक्त तरंग–जलमयत्वादि गुण से समुद्र से अभिन्न होने से भी समुद्र का गाम्भीर्य्य, रत्नाकरत्वादि गुणों के अभाव से पृथक् होती है। मात्र समुद्र में लीन होकर ही पृथक् रूप से दर्शन के अयोग्य होने से ऐक्य प्राप्त होती है, तब उक्त तरंग, समुद्र हो गयी है, ऐसा कहा जाता है। तद्रूप निज कारण ब्रह्म के तेजः प्रभृति स्थानीय अंश के मध्य में मुक्तिकाल में लीयमान् जीवगण ब्रह्म में ऐक्य प्राप्त होते हैं, इस प्रकार कथन मात्र है, किन्तु स्वरूपतः सामर्थ्यतः सीमाबद्ध जीव में अनन्त सुखघन ब्रह्मत्व की प्राप्ति हुई है, मुक्ति में ऐसा नहीं कहा जा सकता है।

अतएव ब्रह्म एवं जीव का दर्शन पृथक् रूप से भिन्नता एवं किसी अंश में परिच्छिन्न रूप में लीन होकर अवस्थित होने से अभिन्नता कथित होती है, एतज्जन्य ही श्रीभगवान् की कृपा से भक्ति सुखास्वादनों के निमित्त सच्चिदानन्द देह में मुक्त जीव की पुनर्वार स्थिति सम्भव होती है। इस दृष्टि से ही आचार्य शंकर का कथन सार्थक होता है, 'सत्यपि भेदापगमे नाथ ! नतुवा परमैक्यापत्ति में हे नाथ ! मैं आपका ही हूँ, ऐसी उक्ति नहीं हो सकती है।

नदी समुद्र का मिलन दृष्टान्त तो सुस्पष्ट है, नाम रूप को छोड़कर नदी समुद्र में मिलती है, वाह्य सत्ता का लोप हेतु समुद्र प्राप्ति प्रतीति मात्र है, तद्रूप मुक्ति में भी जीव सर्वथा ब्रह्म नहीं होता है।

वस्तुतः ब्रह्म एवं जीव स्वरूपतः सामर्थ्यतः सर्वथा ही भिन्न है, जीव, मुक्ति होने से भी जगत्कर्त्ता नहीं होता है, बिभुचित् ब्रह्म, अणुचित् जीव है, चैतन्यांश में उभय की अभिन्नता, अथच स्वरूप–सामर्थ्य में चिर भिन्नता है, (ब्रह्मसूत्र ४।४।२१) में भोगमात्र साम्यलिंगाच्च के अनुसार विमुक्त जीव ब्रह्म के सहित आनन्दोपभोग का ही अधिकारी है। अंशी अंश में भेदाभेद सम्बन्ध विद्यमान है, सुतरां ब्रह्म एवं जीव में सर्वदा भेदाभेद सम्बन्ध स्थिरीकृत हुआ। भेदवाचक–अभेदवाचक श्रुतियों का समन्वय भी उससे होता है।

शक्तिमान् के स्वरूप में शक्ति अवस्थित है, वह अग्नि की दाहिका शक्ति के समान स्वाभाविकी है, एक के सहित अपर का अविच्छेद्य सम्बन्ध है, परब्रह्म की अच्छेद्या स्वरूपानुबन्धिनी शक्ति (श्वेताश्व ६।८) आगन्तुक नहीं है। (१।३।१) 'अचिन्त्य ज्ञान शब्द श्रुतार्थापक्ति ही वाच्य है। इसमें श्रुति का मुख्यार्थ को त्यागकर लक्षणा करने की आवश्यकता नहीं है। जीव ब्रह्म के मध्य में अचिन्त्य भेदाभेद सम्बन्ध हेतु भेदवाचक श्रुति वाक्य में भेद दृष्टि का प्राधान्य एवं अभेदवाचक श्रुति वाक्य में अभेद दृष्टि का ही प्राधान्य सूचित हुआ है।

प्रस्तुत ग्रन्थकर्त्ता श्रीबलदेवविद्याभूषण—आनुमानिक खृष्टीय अष्टादश शताब्दी में आविर्भूत हुए थे। जन्मस्थान—उड़िष्या के अन्तर्भूत बालेश्वराभिजनस्थ रेमुणा के निकटवर्त्ती एक पल्ली है। चिल्काह्रद के तीरवर्त्ती विद्वद्गोष्ठी में आपने व्याकरण, अलंकार, न्यायशास्त्र का अध्ययन किया, पश्चात् वेदाध्ययन हेतु महीशूर गये थे। अनन्तर पुरुषोत्तम क्षेत्र में अवस्थान के समय श्रीरसिकानन्दप्रभु के प्रशिष्य कान्यकुब्ज निवासी श्रीराधादामोदर के निकट 'षट्संदर्भ' अध्ययन कर गौड़ीय वैष्णवधर्म के सुगभीर मर्म में आकृष्ट होकर श्रीराधादामोदर का शिष्यत्व ग्रहण किया था। पीताम्बरदास के निकट भक्तिशास्त्र एवं विश्वनाथ चक्रवर्त्तीपाद के निकट श्रीमद्भागवत अध्ययन किया था।

श्रीवृन्दावनस्थ श्रीराधाश्यामसुन्दरदेव आपके सेवित विग्रह हैं, आपके प्रधान शिष्य उद्धवदास, नन्दमिश्र थे, आपके रचित ग्रन्थसमूह—ब्रह्मसूत्र के श्रीगोविन्दभाष्य, षट्संदर्भ टीका, लघुभागवतामृत टीका, सिद्धान्तरत्न, सिद्धान्तदर्पण, प्रमेयरत्नावली, श्यामानन्दशतक की टीका, नाटकचन्द्रिका की टीका, साहित्यकौमुदी, छन्दःकौस्तुभ टीका, काव्यकौस्तुभ, श्रीमद्भागवत की वैष्णवानन्दिनी टीका, श्रीगोपालतापनी टीका, श्रीगीताभाष्य, स्तवमाला टीका, ऐश्वर्य्यकादम्बिनी प्रभृति गौड़ीय वैष्णव साहित्य की प्रभूत शोभाबर्द्धक हैं।

एतत् संलग्न नवरत्न ग्रन्थ प्रणेता श्रीहरिरामव्यास महोदय हैं, इसका अपर नाम स्वपद्धति है, आप बुन्देलखण्डस्थ उँड़छा ग्राम के ब्राह्मणकुल में सम्वत् १५६७ में प्रादुर्भूत हुए थे। आप श्रीमन्महाप्रभु के परम गुरु के शिष्य श्रीमाधव के कृपापात्र थे, आपने स्वयं ही गुरु–प्रणाली में उनका उल्लेख किया है। श्रीमध्वसम्मत 'हरि परतमः सत्यं जगत्' इत्यादि नवप्रमेय को अंगीकार कर वेद–पुराणादि प्रमाण द्वारा प्रमेय समूह का स्थापन किया है।
ग्रन्थान्त में आपने लिखा है–

नवरत्नमयीमेतां मालां कण्ठे वहन् बुध,
सौन्दर्य्यातिशयात् कृष्णो दृश्यतां प्रतिपद्यते।

———— ———— ————

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनम्।
रम्या काचिदुपासना व्रजबधूवर्गेण या कल्पिता।।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमापुमर्थो महान्,
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः।।

'शब्दान्तर के द्वारा श्लोकस्थ पदार्थ समूह का स्थापन नवरत्न ग्रन्थ में सुस्पष्ट है। प्रमेयरत्नावली एवं नवरत्न इस सम्प्रदाय के अभिन्न प्रकरण ग्रन्थ हैं।

–श्रीहरिदासशास्त्री



।। श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ।।

सूचीपत्रम्

श्रीहरिरामव्यास कृत

श्रीगुरुपरम्परा नवरत्ननिर्णयः

—प्राचीनवाक्यं—

"आराध्यो भगवान् व्रजेशतनय
स्तद्धाम वृन्दावनं।
रम्याकाचिदुपासना व्रजबधूवर्गेण
या कल्पिता।।
शास्त्रं भागवतं प्रमाणममलं
प्रेमा पुमर्थो महान्।
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्म्मतमिदं
तत्रादरो नः परः।।"

—।। प्रमेयरत्नावली समाप्ताः ।।—

श्रीगदाधर गौरहरि प्रेस
श्रीहरिदास निवास, प्राचीन कालीदह, वृन्दावन (मथुरा)

• श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् •

प्रमेयरत्नावली

जयति श्रीगोविन्दो गोपीनाथः समदनगोपाल।
वक्ष्यामि यस्य कृपया प्रमेयरत्नावलीं सूक्ष्माम्।।१।।

• कान्तिमाला •

गौड़ोदयमुपयातस्तमः समस्तं निहन्ति यो युगपत्।
ज्योतिश्च योऽतिशीतः पीतस्तमुपास्महे कृताञ्जलयः।।

विद्याभूषणापरनाम्ना बलदेव श्रीगोविन्दैकान्तिना ब्रह्मसूत्रेषु गोविन्दभाष्याभिधानंव्याख्यानं विरचितम्। अथ कैश्चिच्छिष्यैर्भाष्य प्रमेयाणि परिपृष्टः, स तानि संक्षेपाद्वक्ष्यन्निर्विघ्नतायै तत्पूर्तये मंगलमाचरति—जयतीति। कीदृशः श्रीगोविन्द इत्याह गोपीनाथो वल्लवीकान्तः। मदयति मनांसि भक्तानामिति मदनः गाः पालयतीति गोपालः ततः कर्मधारयः। स्फुटार्थमन्यत्। श्लेषेण वृन्दाटवी–मधिष्ठितानां श्रीगोविन्दादिसंज्ञानां निखिलचैतन्यभक्ताभीष्टानां त्रयाणामर्च्चावताराणां जयाशंसनम्।।

प्रणम्यसच्चिदानन्दं श्रीगौरांगमहाप्रभुम्।
प्रमेयरत्नावलीग्रन्थं भाषया वच्मि साम्प्रतम्।।
श्रीहरेर्दास्यलुब्धस्य वृन्दारण्यंनिवासिनः।
सदानन्दप्रदायिनी कृतिरेषा तु गृह्यताम्।।

श्रीगोविन्दभाष्य निर्म्माण के अनन्तर कतिपय शिष्य द्वारा श्रीगोविन्दभाष्यस्थ प्रमेयविषयक प्रश्न उपस्थापित होने पर महानुभाव श्रीबलदेवविद्याभूषणमहाशय उक्त प्रमेय समूह का परिचायक ग्रन्थ

भक्त्याभासेनापि तोषं दधाने,
धर्माध्यक्षे विश्वनिस्तारिनाम्नि।
नित्यानन्दाद्वैतचैतन्यरूपे,
तत्त्वे तस्मिन्नित्यमास्तां रति र्नः।।२।।

उभयत्र प्रणतिलक्षणमंगलं कृतम् जयतिना तस्याक्षेपात्।।१।।

पुनरपि तत्र रतिप्राथनं मंगलमाह—भक्त्येति। तत्त्वे परमात्मनि कृष्णे (तत्त्वं वाक्यप्रभेदे स्यात्स्वरूपे परमात्मनीति विश्वः) कीदृशीत्याह—भक्त्याभासेनापीति। यथा पुत्रोद्देश्येन नामोच्चारयत्यजामिले तुष्टिर्दृष्टा। धर्माध्यक्षे प्रवर्त्तके। नित्यं आनन्दो यस्य तन्नित्यानन्दञ्च, नास्ति द्वैतं देहदेहिभेदो यस्यतदद्वैतञ्च, चैतन्यं विज्ञानञ्चेति कर्म्मधारयः। तद्रूपे तदात्मके। पक्षे कलावस्मिन् श्रीकृष्णः संकर्षणेन शम्भुना च सहितो जनानुद्धर्तुमवततार। तत्र श्रीकृष्णस्य चैतन्य इति संकर्षणस्य नित्यानन्द इति शम्भोस्त्वद्वैत इति नामाऽभूत्। तस्मिन् त्रिरूपे तत्त्वे नो रति र्नित्यमास्ताम् अन्यत् प्राग्वत्। प्रमाणं त्वत्राकरग्रन्थाद् ग्राह्यम्।।२।।

प्रणयन में व्रती होकर ग्रन्थ निर्विघ्न परिसमाप्ति के निमित्त प्रथमतः मंगलाचरण करते हैं।

भक्तगणों के मनोमदनकारी गोकुलपालक वल्लवीजन वल्लभ श्रीमान् गोविन्द जययुक्त हों जिनकी कृपा के बल से मैं सूक्ष्मा प्रमेयरत्नावली ग्रन्थ का प्रणयन करूँगा।।१।।

पुनर्वार श्रीकृष्ण में रति प्रार्थनरूप मंगलाचरण करते हैं। जो भक्त्याभास से भी जीव के प्रति आनन्दित होते हैं, जिनके नामोच्चारण मात्र से ही अखिल विश्ववासी प्राणियों का निस्तार हो जाता है, जो परमधर्म के एकमात्र प्रवर्त्तक हैं, उन नित्यानन्द श्रीअद्वैत श्रीचैतन्यरूप तत्त्व में हम सभी की प्रीति नित्य ही प्रवर्द्धिता हो।।२।।

आनन्दतीर्थनामा सुखमयधामा यतिर्जीयात्।
संसारार्णवतरणिं यमिह जनाः कीर्तयन्ति बुधाः।।३।।
भवति विचिन्त्या विदुषां निरवकरा गुरुपरम्परा नित्यम्।
एकान्तित्वं सिद्ध्यति ययोदयति येन हरितोषः।।४।।

यदुक्तं पद्मपुराणे–

सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते विफला मताः।
अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः।।

अथ पूर्वाचार्य्यं प्रणमत्यानन्देति। आनन्दतीर्थ इति श्रीमध्वाचार्य्यस्य नामान्तरम्। यतिः परिव्राट्। तरणिं नौकाम्।।३।।

भाष्यप्रमेयाणि यतो लब्धानि, सा गुरुपरम्परा ध्येयेत्याह भवतीति। गुरुपरम्परा देशिकवंशः। (परम्परा परीपाठ्यांसन्तानेऽपि बधे क्वचिदिति विश्वः) निरवकरा निर्दोषा। तस्या ध्यानेन किं स्यादित्यत्राह। यया परम्परया ध्यातया ध्यातृरेकान्तित्वं सिद्ध्यति, हर्येकनिष्ठत्वं भवति। येनैकान्तित्वेन हरितोष उदयति 'तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।' प्रियोहि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं सच ममप्रिय इत्यादि स्मृतेः।।४।।

प्रमेयोपदेशपथप्रवर्त्तकाश्चत्वारः प्रागभुवन्। तेभ्यो गङ्गाप्रवाहवदपरे प्रचारिताः। तदुपदिष्टेन पथा विना मन्त्रशास्त्रादुपलब्धा विष्णुमन्त्रा मुक्तिदा न भवन्ति। इत्यत्रपाद्मवाक्यमाहसम्प्रदायेति शिष्टाऽनुशिष्टगुरूपदिष्टो मार्गः

अनन्तर पूर्वाचार्य को प्रणाम करते हैं, आनन्दतीर्थ नामक सुखमय धामस्वरूप यति श्रीमन्मध्वाचार्य्य की जय हो, बुधगण जिन्हें संसारार्णव की तरणिरूप में जानते हैं।।३।।

भाष्य में निर्णीत प्रमेय समूह की प्राप्ति जिन गुरु–परम्परा से हुई है, उन गुरु–परम्परा का ध्यान करना अवश्य विधेय है। पण्डितगण निर्दोष गुरु–परम्परा का ध्यान नित्य ही करते हैं, जिससे श्रीकृष्ण–चरणों में एकान्तित्व होता है, उससे ही श्रीभगवान् हरि सन्तुष्ट होते हैं।।४।।

श्रीब्रह्मरुद्रसनका वैष्णवाः क्षितिपावनाः।
चत्वारस्ते कलौ भाव्या ह्युत्कलेपुरुषोत्तमादिति।।५।।
रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्यं चतुर्मुखः।
श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रो निम्बादित्यं चतुःसनः।।६।।

तत्र स्वगुरुपरम्परा यथा–

श्रीकृष्ण–ब्रह्म–देवर्षि–वादरायणसंज्ञकान्।
श्रीमध्व–श्रीपद्मनाभ–श्रीमन्नृहरि–माधवान्।।

सम्प्रदायः। शिष्टत्वं वेदप्रमाण्याभ्युपगन्तृत्वम्। अतः सम्प्रदायविहीनानां विष्णुमत्राणां जप्तानामपि वैफल्याद्धेतोः कलौ तदारम्भे सम्प्रदायिन स्ते केऽभूवन् तत्राह–श्रीपति। पुरुषोत्तमादिति। जगन्नाथात्तत् प्रेषणात्तत्क्षेत्रादित्यर्थः।।५।।

आदिभूतास्ते चत्वारः स्वस्वसम्प्रदायान् प्रौढान् वीक्ष्य स्ववंश्येषु तद्धुर्यांश्चतुरश्चक्रुरित्याह–रामेति। श्रीर्लक्ष्मीः स्वसम्प्रदायप्रवर्त्तनमतया रामानुजं स्वीचक्रे। स्फुटार्थ मन्यत्।।६।।

मुख्यप्रयोजनाभावात् श्र्यादिपरम्परां विहाय स्वकीयां ब्रह्मपरम्परामाह

प्रमेयोपदेशक धर्मपथ प्रवर्त्तक पहले चार महानुभाव हुए थे, उनसे चार सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन हुआ, उनका उपदिष्ट मन्त्र ही फल प्रसू होता है, अपर नहीं, उसको कहते हैं। पद्मपुराण में उक्त है, सम्प्रदाय विहीन मन्त्र निष्फल है अर्थात् उसके जप से फल प्राप्ति नहीं होती है। इस हेतु कलियुग में चार सम्प्रदाय प्रवर्त्तन होंगे। श्री ब्रह्म, रुद्र, सनक अर्थात् लक्ष्मी, ब्रह्मा, शिव एवं सनकादि पृथ्वी को पवित्र करने के निमित्त कलियुग में उत्कलदेश स्थित श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र से सम्प्रदाय प्रवर्त्तकरूप में अवत्तीर्ण होंगे।।५।।

उनके मध्य में श्रीरामानुजाचार्य को श्रीलक्ष्मीदेवी ने, श्रीमध्वाचार्य को श्रीब्रह्माजी ने, श्रीविष्णुस्वामी को श्रीशंकर ने और श्रीनिम्बादित्य को श्रीसनकादिकों ने सम्प्रदाय प्रवर्त्तन के निमित्त शिष्यरूप से स्वीकार किया है।।६।।

सामान्यतः सम्प्रदाय प्रवृत्ति कथनानन्तर स्वीय गुरु–परम्परा को कहते हैं। यथा–भगवान् श्रीकृष्ण, तत् शिष्य कमलासन,

अक्षोभ्य – जयतीर्थ – श्रीज्ञानसिन्धुदयानिधीन्।
श्रीविद्यानिधि – राजेन्द्र–जयधर्म्मान् क्रमाद्वयम्।।
पुरुषोत्तम – ब्रह्मण्य – व्यासतीर्थांश्च संस्तुमः।
ततो लक्ष्मीपतिं श्रीमन्माधवेन्द्रञ्च भक्तितः।।
तच्छिष्यान् श्रीश्वराद्वैत–नित्यानन्दान् जगद्गुरून्।
देवमीश्वरशिष्यं श्रीचैतन्यञ्च भजामहे।
श्रीकृष्णप्रेमदानेन येन निस्तारितं जगत्।।७।।

कृष्णेति। ब्रह्मणः श्रीकृष्णशिष्यत्वं श्रीगोपालपूर्वतापिन्यांविस्फुटम्। श्रीमध्वमुनेर्बादरायणशिष्यत्वं त्वैतिह्यप्रसिद्धम्। मध्वशङ्करौ सहस्र–विद्वद्गोष्ठीमध्यस्थौ मणिकर्णिकायामनशनतया विचारं चक्रतुः। तत्र नभसि नीलाभ्रप्रख्यः सवैर्दृष्टो व्यासो मध्वमतं स्वीचकार। शङ्करमतंत्वत्याक्षीदिति प्रसिद्धम्। तच्छिष्यानिति तस्य श्रीमाधवेन्द्रस्य शिष्यान् श्रीश्वराचार्या–द्वैताचार्यनित्यानन्दान्। देवमिति। माधवेन्द्रस्य ईश्वरः, ईश्वरस्य श्रीकृष्णचैतन्य इति। इत्थञ्च त्रयाणां प्रभूणां वंश्यैरिदानीन्तनैः सम्बध्य स्वस्वगुरुपरम्परा सर्वैर्वोद्धव्या इति दर्शितम्। येनेति श्रीचैतन्येन।।७।।

तत् शिष्य देवर्षि नारद, तत् शिष्य–वेदविद् वरेण्य श्रीवादरायण, तत् शिष्य श्रीमन्मध्वाचार्य, श्रीपद्मनाभ, तत् शिष्य श्रीमान् नृहरि, तत् शिष्य श्रीमान् माधव, तत् शिष्य अक्षोभ्य, तत् शिष्य जयतीर्थ, तत् शिष्य श्रीज्ञानसिन्धु, तत् शिष्य दयानिधि, तत् शिष्य राजेन्द्र, तत् शिष्य जयधर्म, तत् शिष्य पुरुषोत्तम, तत् शिष्य ब्रह्मण्य, तत् शिष्य व्यासतीर्थ, तत् शिष्य लक्ष्मीपति, तत् शिष्य श्रीमाधवेन्द्र उनके शिष्य श्रीश्वराचार्य श्रीअद्वैताचार्य एवं श्रीनित्यानन्द ये तीन जन जगद्गुरु हैं, इन सभी के चरणों में प्रणाम करता हूँ एवं श्रीश्वराचार्य के शिष्य श्रीचैतन्यदेव हैं, जिन्होंने श्रीकृष्ण–प्रेम–भक्ति प्रदान कर अखिल जगत्वासियों को निस्तार किया है, उनके श्रीचरणारविन्दों का भजन करता हूँ।।७।।

श्रीमध्वः प्राह विष्णुं परतममखिलाम्नायवेद्यञ्च विश्वं।
सत्यं भेदञ्च जीवान् हरिचरणजुष स्तारतम्यञ्च तेषाम्।।

एवं स्वगुरुपरम्परामाख्याय तत्प्रमेयाणि तावदुद्दिशति श्रीमध्व इति।

मध्वो मुनिरस्मत् पूर्वाचार्य्यो विष्णुं परतममखिलाम्नायवेद्यञ्चाह। तस्य सर्वजीवाभिन्नतां चिन्मात्राद्वितीयतयाम्नायलक्ष्यताञ्च निरस्यति–विश्वं भेदञ्च सत्यमाह। आविद्यकत्वात् प्रपञ्चस्तद्भेदश्चमृषेति परोत्प्रेक्षितं कुमतं निराकरोतीत्यर्थः। जीवान् बद्धमुक्तान् नित्यमुक्तान् सर्वान् हरिचरणजुषो हरेर्दासानाह, तेषां हर्यात्म कत्वं निराकरोति। तेषां जीवानां तारतम्यं स्वरूपसाम्ये सत्यपि साधनोज्जृम्भितैः फलैः वैषम्यमाह। त्रिदण्डिप्रतिपादितं फलतोऽपि साम्यं निराकरोति। जीवानां विष्ण्वङ्घ्रिलाभं विष्णुसाक्षात्कारं मोक्षमाह, पराभिमतां तेषां विष्णुरूपतां निराकरोति। तस्य विष्णोरमलं निष्कामं यद्भजनं तत्तस्य मोक्षस्य हेतुमाह। ब्रह्माहमस्मीति ज्ञानस्य मोक्षहेतुतां निराकरोति। प्रत्यक्षादीनि त्रीणि स्वमते

इस प्रकार गुरु–परम्परा निर्णय के अनन्तर स्वीय पूर्वाचार्य प्रदर्शित प्रमेय समूह का वर्णन करते हैं।

श्रीश्रीकृष्णचैतन्यदेव साक्षात् भगवान् होकर लोक–शिक्षा प्रदान हेतु श्रीमन्मध्वाचार्य प्रणीत मत को सर्वोत्तम समझकर अंगीकार किया एवं उन्होंने श्रीमन्मध्वाचार्य प्रकाशित 'नव प्रमेय' का उपदेश किया था। जिसके ज्ञान के बिना साम्प्रदायिक तत्त्वों का ज्ञान नहीं हो सकता है। 'नव प्रमेय' ये हैं–हमारे पूर्वाचार्य श्रीमन्मध्वमुनि कहते हैं कि एकमात्र श्रीविष्णु ही परतम वस्तु हैं (१) एवं वही सर्ववेद वेद्य हैं (२) विश्व सत्य है (३) एवं तद्गतभेद भी सत्य है (४) यह भेद पाँच प्रकार के होते हैं, भेदपंचक नाम से इसकी प्रसिद्धि है, १–ईश्वर जीव भेद, २–जीव जीव भेद, ३–जड़ जड़ भेद, ४–जड़ जीव भेद, ५–जड़ ईश्वर भेद। बद्धमुक्त एवं नित्यमुक्त उभयविध जीवमात्र ही भगवान् के दास हैं। साधनजनित फलविशेष हेतु जीवों

मोक्षं विष्णवङ्घ्रिलाभं तदमलभजनं तस्य हेतुं प्रमाणं।
प्रत्यक्षादित्रयञ्चेप्युपदिशति हरिः कृष्णचैतन्यचन्द्रः।।८।।

तत्र श्रीविष्णोः परतमत्वम् यथा गोपालोपनिषदि–

तस्मात् कृष्ण एव परोदेवस्तं ध्यायेत्तं रसेत्तं भजेत्तं यजेत्।
इति।।६।।

प्रमाणान्याह, तेभ्योऽधिकान्युपमानादीनि निराकरोति। इत्येतान्येव मध्वमुनिस्वीकृतानि नवप्रमेयाणि श्रीकृष्णचैतन्यहरि स्तदन्वयगृहीतदीक्षः स्वशिष्यानुपदिशति। उभयत्र लट् प्रयोग स्तयोः सत्वात्। 'जगत्प्राणो वायुर्देवो विष्णोरेकान्तीति' केनोपनिषदि प्रसिद्धम्। यो हनुमान् सन् श्रीराघवेन्द्रं भीमः सन् श्रीयादवेन्द्रं मध्वः सन् पाराशर्य श्रीमुनीन्द्रञ्च तत्तन्मतप्रतीपान् खण्डयन् प्रतोषयामास। यद्यपि श्रीकृष्णचैतन्य ईश्वर स्तथापि तन्मतं सर्व्वोत्तमंवीक्ष्य तदन्वये दीक्षां स्वीचकार लोकसंग्रहेच्छुः। यत्र विशुद्धं द्वैतं हरेरात्ममूर्तित्वादिति च वर्ण्यते।।८।।

एवमुद्दिष्टानि प्रमेयाणि क्रमात् सप्रमाणानि कर्त्तुप्रवर्त्ततेतत्र श्रीविष्णोरित्यादिभिः। परतमत्वं श्रेष्ठतमत्वम्। तस्मादितिपूतोक्तादर्थप्रचयाद्धेतोः,

---

में तारतम्य है, (६) भगवान् विष्णु के चरणलाभ ही परम मोक्ष है, (७) निष्कामभाव से श्रीहरिः भजन ही मुक्ति का कारण है, (८) प्रत्यक्ष अनुमान एवं शब्द से तीन प्रमाण हैं, (६) अर्थात् सर्वजीव के सहित ईश्वर की अभिन्नता, चिन्मात्राद्वितीयताहेतु वेद लक्ष्यता आविद्यकार्यता हेतुक प्रपंच एवं भेद मिथ्या, जीव का भगवत्स्वरूप, त्रिदण्डि प्रतिपादित जीव के परस्पर फलगत साम्य, मोक्षावस्था में जीव का विष्णुरूपत्व एवं ज्ञान ही एकमात्र मुक्ति का कारण एवं प्रत्यक्ष अनुमान शब्द प्रमाण त्रय से अतिरिक्त उपमान प्रभृति प्रमाण स्वीकार्य्य इत्यादि परमत खण्डनपूर्वक निज मत में 'नव प्रमेय' वर्णित किये हैं।।८।।

श्वेताश्वतरोपनिषदि च–

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशै र्जन्ममृत्युप्रहाणिः। तस्याभिध्यानात् तृतीयं देहभेदे विश्वैश्वर्यं केवलमाप्तकामः।।इति।।

।।१।११।।

तन्मन्त्रतद्वाच्यतया द्वेधा सन्त ध्यायेत् स्मरेत् रसेत् जपेत् भजेत् परिचरेत्, यजेत्–अर्च्चयेदिति।।

ज्ञावेति। शास्त्रात् सद्गुरूक्तात्, देवे परेशं ज्ञात्वावस्थितस्य मुमुक्षोः सर्वेषां देहदैहिकममतापाशानां हानिर्भवति। तत् पाशजन्यैः क्लेशैः क्षीणैर्विशिष्टस्य तस्याः प्रारब्धभोगपूर्तेः पुनः पुनर्जायमानस्य जन्ममृत्युप्रहाणिर्भवति।

श्रीमन्मध्वाचार्य के स्वीकृत यही 'नव प्रमेय' हैं, जो क्रमशः शिष्टानुशिष्ट होकर श्रीमच्चैतन्यदेव के द्वारा उपदिष्ट हुए थे। प्रस्तुत प्रकरण में इनका ही क्रमशः सप्रमाण निर्णय हुआ है। प्रथम तो भगवान् श्रीविष्णु परतम वस्तु हैं, इसका प्रतिपादन करते हैं–यथा गोपालोपनिषद् में लिखित है–श्रीकृष्ण ही एकमात्र परमदेव हैं, अतएव इनका चिन्तन करें, उन्हीं का जप, उन्हीं की आराधना प्रेमपूर्वक करें। श्वेताश्वतर उपनिषद् में उक्त है–जिन्होंने सद्गुरु के निकट से परमेश्वरतत्त्व को समझ लिया है उसके देह–दैहिक ममतापाश की हानि होती है, ममतादि पाश नष्ट होने पर पाश हेतु क्लेश समूह का क्षय मूलतः होता है, अतः परजन्म–मृत्यु की हानि होती है, अर्थात् पुनः–पुनः जन्म–मृत्युरूप घोर संसार सागर से वह जन अनायास ही स्वयं को मुक्त कर लेता है, अनन्तर उत्तरोत्तर श्रीभगवान् के अभिध्यान के द्वारा लिंग शरीर पूर्णतः विनष्ट होने से शुद्ध सत्त्वमय अप्राकृत भागवत पद प्राप्त कर वह पूर्णकाम होता है। अतएव एकमात्र यह परम वस्तु ही ज्ञेय है, इसके अतिरिक्त और कुछ भी वेदितव्य नहीं है एवं श्रीमद्भगवद्गीता में भी उक्त है, 'हे धनंजय ! मुझसे परतम वस्तु और कुछ भी नहीं है।।६।।

अनन्तर जिस हेतु समूह के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण परतम वस्तु स्थापित हैं, उन्हें कहते हैं। जो पराख्यशक्ति के द्वारा संसार

एतज् ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित्।
इति च ।।१।१२।।

श्रीगीतासुच–
मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय !' इति।।७।७।।

हेतुत्वाद्विभुचैतन्यानन्दत्वादिगुणाश्रयात्।
नित्यलक्ष्म्यादिमत्वाच्च कृष्णः परतमो मतः।।१०।।

'तत्र सर्वहेतुत्वं यथाहुः' श्वेताश्वतराः–
एकः सदेवो भगवान् वरेण्यो योनिस्वभावानधितिष्ठत्येकः।।
।। इति।।५।४।।

विड़ालीदन्तस्पर्शैन तदर्भकस्येव जन्मादिना दुःखं तस्य न भवतीत्यर्थः। अथोत्तरोत्तरं तस्य देवस्याभिध्यानात् देहस्य लिङ्गशरीरस्य भेदे विनाशे सति चान्द्रब्राह्मापेक्षया तृतीयं भागवतं पदं स देवध्यायी लभते विमुक्तो भवतीत्यर्थः कीदृशं तृतीयं तदित्याह–विश्वैश्वर्यं कृत्स्नविभुतिकंकेवलं प्रकृत्यस्पुष्टं, ततः स देवध्यायी आप्तकामः पूर्णाभिलाषो भवति। एतद्देवात्मकं वस्तु ज्ञेयं, अतःपरमन्यद्वेदितव्यं किंचिन्नास्ति तस्यैव पारतम्यात्।। मत्त इति परतरं मत्तोऽन्यत् किंचिन्नास्तीति मामेव सर्वोत्तमं विद्धीत्यर्थः। परमेव परतरं स्वार्थे प्रत्ययस्तरः।।६।।

यैर्हेतुभिर्विष्णोः पारतम्यं तानाह हेतुत्वादिति। हेतुत्वं प्रपञ्चनिमित्तोपादानत्वं। तत्र पराख्यशक्तिमत्वेन निमित्तत्त्वं प्रधान क्षेत्रज्ञशक्तिमत्वेन तूपादानत्वं बोध्यं, स्फुटार्थमन्यत्।।१०।।

एक इति। सदेवो भगवान्, एकः सर्वोत्तमः, अतो वरेण्यः पूज्यः, योनीनां प्रधानमहदादीनां कारणतत्त्वानां स्वभावान् स्वरूपाणि एकः सहायरहितः

के निमित्त कारण है, प्रधान एवं क्षेत्रज्ञ शक्ति के द्वारा उपादान कारण है एवं जो विभु पदार्थ है, चैतन्यानन्दत्वादि गुणगण के आश्रय हैं एवं नित्य लक्ष्मादि विशिष्ट हैं, वह श्रीकृष्ण ही परतम वस्तु हैं।।१०।।

श्रीभगवान् की सर्वहेतुता के सम्बन्ध में प्रमाण प्रदर्शन करते हैं।

यच्च स्वभावं पचति विश्वयोनिः।
पाच्यांश्च सर्वान् परिणामयेद्यः।।इति च।।५।५।।

विभुचैतन्यानन्दत्वं–'यथा काठके'–

'महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति' इति।।४।४।।

विज्ञानसुखरूपत्वमात्मशब्देन बोध्यते।
अनेन मुक्तगम्यत्वव्युत्पत्तेरिति तद्विदः।।११।।

पराख्यशक्तिवेशोऽधितिष्ठति वशे संस्थापयति। ('एके मुख्यान्यकेवलाः' इत्यमरः), ('योनिः स्यादाकरेभगे' इति विश्वः), ('योनिः कारणे भगताम्रयोः' इति हेमश्च), ('स्वरूपञ्च स्वभावश्च' इत्यमरः) यद्वा एकः। तेभ्योऽन्यस्तदस्पृष्ट इत्यर्थः।। यच्चेति। यो देवः स्वभावं तेषां प्रधानादीनां स्वरूपाणि पचति महदादिकार्याविर्भावकतया आभिमुख्यं नयतीत्यर्थः। पाच्यांस्तदाभिमुख्ययोग्यान् सर्वान् प्रधानादीनर्थान् यो देवः परिणामयेन्महदाद्यवस्थां नयेदित्यर्थः। एवं पराख्यशक्तिवेशो यो विश्वनिमित्तं,

---

श्वेताश्वतर उपनिषद् में उक्त है, सर्वोत्तम, एकमात्र पूज्य भगवान् स्वयं अस्पृष्ट रहकर स्वीय पराख्यस्वरूप शक्ति के द्वारा प्रधानादि कारणतत्त्व समूह को संस्थापित करते हैं एवं जो कारणतत्त्व समूह को कार्य्याविर्भावकता के निमित्त आभिमुख्य प्राप्त कराते हैं। अतएव उस आभिमुख्ययोग्य प्रधानादि तत्त्व को जो भगवान् परिणामित करते हैं अर्थात् महदादि अवस्था को प्राप्त कराते हैं। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण पराख्यशक्ति के द्वारा विश्व के निमित्त कारण हैं एवं प्रधान, क्षेत्रज्ञ शक्ति के द्वारा उपादान कारण होते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण का विभुत्व एवं चैतन्यानन्दत्वादि गुणाश्रयत्व का प्रतिपादन करते हैं–कठोपनिषद् में वर्णित है, 'महान् अर्थात् पूज्य एवं विभु आत्मा की उपासना करने पर पुनर्वार शोकग्रस्त नहीं होता है।

उक्त श्रुति वाक्य से विभुत्व का बोध होता है, चैतन्यानन्दत्वादि गुणाश्रयत्वादि का बोध कैसे सम्भव है ? उत्तर में कहते हैं, तत्त्ववित्

वाजसनेयिनश्चाहु–

विज्ञानमानन्दं ब्रह्म रातिर्दातुः परायणम्। इति।।६।२८।।

श्रीगोपालोपनिषदि च–

तमेकं गोविन्दं सच्चिदानन्दविग्रहम्।।इति।।

स एव प्रधानक्षेत्रज्ञशक्तिवेशोविश्वयोनिर्जगदुपादानमित्यर्थः। महान्तं पूज्यं मत्वा ज्ञात्वा उपास्य चेत्यर्थः। नन्वस्माद्वाक्याद्विभुत्वं प्राप्तं, चैतन्यानन्दत्वं न प्राप्यते इति चेत्तत्राह–विज्ञानेति। अत्यते लभ्यते मुक्तैरयमित्यात्मा अततेः कर्मणि मनिन्। मुक्ताः खलु तादृश मेव तं ध्यायन्ति लभन्ते चेति भावः।।११।।

तथात्वे वाचनिकमाह–विज्ञानमिति। दातुर्यजमानस्य, रातिः फलार्पकम्। तमेकमिति स्फुटार्थम्।। ननु मूर्तत्वं चित्सुखवस्तुनः कथं ? तत्राह–मूर्तत्वमिति भैरवादे रागस्य गान्धर्ववासिते श्रोत्रे यथा मूर्तत्वं प्रतीतं, तथा भक्ति भाविते मनसि तस्य तत्व मित्यर्थः 'विज्ञानघनानन्दघनसच्चिदानन्दैकरसे भक्तियोगे तिष्ठतीति' गोपालोपनिषदि (गोपालोत्तरतापनी–८६) ब्रह्मणि विज्ञानघनादिशब्दप्रयोगाच्च तस्य तत्वम्।

पण्डितगण कहते हैं जो मुक्त पुरुष प्राप्य है वह आत्मा है, अत्यतेलभ्यते मुक्तैरयमित्यात्मा, मुक्त पुरुषगण जिस आत्मा को प्राप्त कर संसार यातना प्राप्त नहीं होते हैं, वह आत्मा विज्ञान सुखरूप हैं अर्थात् चैतन्य एवं आनन्दस्वरूप हैं। इस व्युत्पत्तिलभ्य आत्म शब्द के द्वारा ही भगवान् का विज्ञान सुखरूपत्व स्वतः सिद्धरूप से लाभ होता है।।११।।

पूर्वोक्त विषय का प्रतिपादन दृढ़रूप से करते हैं, वाजसनेय उपनिषद् में सुस्पष्ट उल्लेख है–'विज्ञानानन्दस्वरूप ब्रह्म ही यजमान को कर्मफल प्रदान करते हैं। इससे ब्रह्म का विज्ञानानन्दत्व प्रतिपादन होता है।

श्रीगोपालोपनिषद् में उक्त है–

श्रीगोविन्द को एकमात्र सच्चिदानन्द विग्रहरूप ही जानना।

मूर्त्तत्वं प्रतिपत्तव्यं चित्सुखस्यैव रागवत्।
विज्ञानघनशब्दादि कीर्त्तनाच्चापि तस्य तत्।
देहदेहिभिदा नास्तीत्येतेनैवोपदर्शितम्।।१२।।

मूर्त्तस्यैव विभुत्वं, यथा मुण्डके–

वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्।।इति।।

'मूर्त्तौ घनः' (पा० ३।३।७७) इति सूत्रेण काठिन्येऽर्थे हन्तेरपप्रत्ययो घनाश्चादेशोऽनुशिष्टः सैन्धवघन इति तस्योदाहरणम् तदिदमचिन्त्य–शक्तिसिद्धं बोध्यम्। देहदेहीति। एतेनचित्सुखवस्तुनः मूर्त्तत्वसमर्थनेन परेशदेहदेहिभेदो नास्तीति चोक्तमित्यर्थः।।१२।।

ननु मूर्त्तत्वे विभुत्वं न स्यात्, तत्राह–मूर्त्तस्येवेति। वृक्ष इति। एकः सर्वाध्यक्षः पुरुषोहरिर्दिवि परव्योम्नि तिष्ठति, स खलु स्वेतरसर्वनमस्यत्वात्

यहाँ संशय हो सकता है कि–सत् चिदानन्द वस्तु के विग्रहवत्त्वादि होना• कैसे सम्भव है ? उत्तर में कहते हैं, चिदानन्द वस्तु का मूर्त्तिमत्त्व होना अवश्य स्वीकार करना होगा, जिस प्रकार भैरवादि राग का मूर्त्तिमत्त्व होना कर्णेन्द्रिय में प्रतीत होता है, उस प्रकार भक्तिभावित मन में चिदानन्द वस्तु की मूर्त्ति की स्फूर्त्ति होती है, श्रुति में 'विज्ञानघन' 'आनन्दघन' इत्यादि घनशब्द प्रयोग हेतु उनका विग्रहवत्त्व सिद्ध होता है। अतएव चिदानन्द वस्तु का मूर्त्तिमत्त्व स्थापित होने पर उन श्रीभगवद् विग्रह में देहदेही–भेद भी निरस्त हुआ। 'मूर्त्तौ घनः' इस सूत्र द्वारा काठिन्य अर्थ में हनधातु का अप्रत्यय तथा घनादेश होता है, सैन्धव घन के समान ही विज्ञान घनादि शब्द निष्पन्न होते हैं। अतएव उस सच्चिदानन्द वस्तु के मूर्त्तिमान् होने में संशय ही नहीं रहता है, कारण घनशब्द काठिन्य का बोधक है और मूर्त्ति के बिना काठिन्य होना भी सम्भव नहीं है।।१२।।

मूत्तिमान् वस्तु का विभुत्व कैसे सम्भव है ? इसका प्रमाण

द्युस्थोऽपि निखिलव्यापीत्याख्यानान्मूर्त्तिमान् विभुः,
युगपद्ध्यातृवृन्देषु साक्षात्काराच्च तादृशः।।१३।।

श्रीदशमे च–

न चान्त नं वहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम्।
पूर्वापरं वहिश्चान्त र्जगतो यो जगच्च यः।।

(भा० १०।६।१३)

तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम्।
गोपिकोलूखलं दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा।।इति।।

(भा० १६।६।१४)

वृक्ष इव स्तब्धः कञ्चिदपि प्रति नम्रो नेत्यर्थः। तेनैकेन पुरुषेण सर्वमिदं जगत् पूर्णं व्याप्तम्। अत्र पुरुषो दिवि तिष्ठतीति मूर्त्तत्वम्, तेनेदं पूर्णमिति तस्येव विभुत्वमागतम्। मिथोऽतिदूरेषु ध्यातृवृन्देषु सिद्धप्रेमसु युगपद् तस्य प्रत्यक्षत्वाच्च तस्य मूर्त्तस्य विभुत्वं, नच धावन् सन्निदध्यात्, योगपद्यविरोधात्।।१३।।

न चान्तरिति। यस्य अन्तर्वहिरादिदेशपरिच्छेदो नास्त्यतो यो जगतः पूर्वादिषु देशेषु युगपदस्ति, यश्च स्वशक्त्याजगन्मयस्तमात्मजं गोपी यशोदा सापराधं मत्वा उलूखले दाम्ना बबन्ध। तं कीदृशं, इत्याह–मर्त्यलिङ्गं

करते हैं, मुण्डक उपनिषद् में स्पष्टतः उल्लेख है कि ईश्वर मूत्तिमान् होकर भी विभु होते हैं, यथा 'सर्वाध्यक्ष श्रीहरिः वृक्ष के समान सबके प्रणम्य होकर परव्योम में अधिष्ठित हैं, उन एक पुरुष के द्वारा जगत् व्याप्त हैं।' यहाँ पर भगवान् पुरुषाकार में परव्योम में अधिष्ठित हैं, अथ च उनके द्वारा समस्त जगत् व्याप्त है, कहने से भगवान् मूर्त्तिमान् होकर भी जगत्व्यापी हैं–यह स्पष्ट ही प्रतीत होता है। जब अनेकानेक भक्तगणों के प्रेमपूरित मानस में युगपद् आविर्भूत होकर पृथक्–पृथक् रूप से प्रत्येक के निकट उपलब्ध होते हैं, तब उनका मूर्त्तिमत्त्व एवं विभुत्व नियमतः स्वभाव सिद्ध है।।१३।।

श्रीगीतासुचः—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्त्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः।। (६।४)

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।।इति।। (६।५)

अचिन्त्या शक्तिरस्तीशे योगशब्देन योच्यते।
विरोधभञ्जिका सा स्यादिति तत्त्वविदां मतम्।।१४।।

द्विभुजमनुष्याकृतिं, अधोक्षजं त्यक्तैन्द्रियक मुखं स्वानुबन्धिसुखवन्तमित्यर्थः। प्राकृतं यथेत्युक्तेर्विज्ञानघनत्वं स्पष्टं, विभोरेवमूर्त्तत्वञ्च।। मयेति। अव्यक्तमूत्तिना प्रत्यग्विग्रहेण मयेदं सर्वं जगत् ततं व्याप्तं, सर्वभूतानि मत्स्थानि मया धृतानि न चाहं तेषु अवस्थितः, तैर्धृतो नाहम्। तानि च भूतानि कलसे जलानीव मयि न धृतानि, किन्तु मत्सङ्कल्पेनैव तानि धृतानि इति भावेनाह—न च मदिति।

श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में उक्त है— जिनके अन्तर—बाहर एवं पूर्वापर देशपरिच्छिन्नत्व नहीं है, किन्तु जो जगत् के अन्तर—बाहर एवं पूर्वापर में वर्तमान हैं एवं निज शक्ति के द्वारा समस्त जगन्मय हुए हैं, उन मनुष्याकार अधोक्षज अर्थात् स्वानुबन्धिसुख विशिष्ट तनय को अपराधी मानकर माँ यशोदा ने उदूखल में रस्सी से प्राकृत बालक के समान बाँध दिया। यहाँ 'प्राकृत बालक के समान' कहने से उनका विज्ञान घनत्व एवं विभु होकर भी आप मूर्त्तिमान् हैं, यह स्पष्टतः प्रतिपादित हुआ। श्रीमद्भगवद्गीता में प्रभु ने स्वयं ही कहा है—मेरी अव्यक्त मूर्त्ति के द्वारा समस्त प्राणीवर्ग को मैं ही धारण करके हूँ। भूत समूह मेरे द्वाराधृत होने पर भी वे सब मुझको प्राप्त नहीं कर सकते अर्थात् जलपूर्ण कलश के समान मैं जगत् को धारण नहीं करता हूँ, किन्तु समस्त पदार्थ संकल्प से ही धृत होते हैं। यह कैसे सम्भव है ? इस प्रकार सन्देह नहीं हो सकता है, कारण मैं ईश्वर हूँ। मेरी योग महिमा का दर्शन करो। सम्प्रति उक्त योग शब्द का अर्थ करते हैं, तत्त्ववित् पण्डितगण ईश्वर में जो

आदिना सर्वज्ञत्वं, यथा मुण्डके।
यः सर्व्वज्ञः सर्व्ववित् ।।इति।। (१।१।६।२।३।७)
आनन्दित्वं च, तैत्तिरीयके। (२।६।१)
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न विभेति कुतश्चन।।इति।।
प्रभुत्व सुहृत्त्व ज्ञानदत्व मोचकत्वानि च श्वेताश्वतरश्रुतौ।
सर्व्वस्य प्रभुमीशानं सर्व्वस्य शरणं सुहृद्।।इति।। (३।१७)
प्रज्ञाच तस्मात् प्रसृतापुराणी।। (४।१८)
संसारबन्धस्थितिमोक्षहेतुः।।इतिच।। (६।१६)

ननु कथमेवं सम्भवेदिति चेत्त्राह—पश्येति ईश्वरस्य ममासाधारणं योगं पश्येति। युज्यते दुर्घटेषु कार्य्येष्वनेनेति व्युत्पत्तेरचिन्त्या शक्तिर्योगः।।१४।।

विभुचैतन्यानन्दत्वादीत्यत्रादिपदग्राह्यमाह, आदिनेति। सर्व्वजानातीति सर्वज्ञः, सर्वं विन्दतीति सर्ववित्। आनन्दमिति। ब्रह्मणो धर्म्मभूतमानन्दं विद्वान् कुतश्चन कालकर्म्मादे र्नविभेति धर्म्म वेदी विमुच्चयते इत्यर्थः। सर्व्वस्येति। प्रभुत्वं प्रभावशालित्वं, ईशानत्वं नियन्तृत्वं, सौहार्द्यं निर्निमित्तहितकारित्वं। प्रज्ञाचेति। तस्मादुपासितादीशात् जीवानां पुराणी सनातनी प्रज्ञा धर्म्मभूता सम्वित् प्रसृता भवति प्रकटीभवतीत्यर्थः। माधुर्य्यञ्चेति। मनुष्यभावेनैव

अचिन्त्य शक्ति है उसको योग शब्द से कहते हैं। वह शक्ति ही विरोधभंजिका होती है अर्थात् उस अचिन्त्य शक्ति द्वारा ही सम्भव असम्भव समस्त कार्य निष्पन्न होते हैं। ईश्वर में कुछ भी असम्भव नहीं है।।१०।।

प्रथम में कहा गया है कि 'चैतन्यानन्दत्वादि गुणाश्रयता हेतु श्रीकृष्ण ही परतम वस्तु हैं। यहाँ आदि शब्द से भे प्राप्त 'सर्वज्ञत्व' का प्रतिपादन करते हैं, मुण्कोपनिषद् में उक्त है—जो सर्वज्ञ हैं और सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं, अनन्तर तैत्तिरीयक श्रुति प्रमाण के द्वारा आनन्द विशिष्टता का प्रतिपादन करते हैं, यथा 'ब्रह्म के धर्मभूत आनन्द को जानने से कुत्रापि काल—कर्मादि से भय नहीं होता है अर्थात्

माधुर्य्यञ्च, श्रीगोपालोपनिषदि।
सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्वरं।
द्विभुजं मौनमुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरं।।इति।। (१५पू०१०)
न भिन्ना धर्म्मिणो धर्म्मा भेदमानं विशेषतः।
यस्मात् कालः सर्व्वदास्तीत्यादिधी र्विदुषामपि।।१६।।

पारमैश्वर्य्यसाध्यकार्य्यकारित्वं तदित्यर्थः। यथा स्तनचुषणेन पूतनाप्राणहरणं, कोमलाङ्घ्रिहत्यातिकठोर शकटभङ्गः सप्ताब्दिक्या मूर्त्त्या गिरिराजस्य धारणमित्यादि। मनुष्यभावमुदाहरति सत्पुण्डरीकेति।।१५।।

ननु विभुत्वादयो धर्म्मा हरे र्भिन्ना न वा ? नाद्यः। एवं धर्म्मान् पृथक्

वह मुक्त होता है। अनन्तर भगवान् के प्रभुत्व सौहार्द्य, ज्ञान प्रदत्व एवं मोचकत्व धर्म का प्रदर्शन क्रमशः करते हैं। श्वेताश्वतर में लिखित है—जो सबके प्रभु, नियन्ता, रक्षक एवं एकमात्र अहैतुक हितकारी सुहृद् हैं। जिन ईश्वर की उपासना करने से उनकी निज धर्मभूता सनातनी प्रज्ञा जीव में प्रसृता होती है अर्थात् जीव में आविर्भूता होती है। जो संसार बन्धन से सबको मुक्त करते हैं। अनन्तर भगवान् के माधुर्य्य को कहते हैं, माधुर्य्य का अर्थ मनुष्य भाव है, भगवान् मनुष्य शरीर में यथावत् अवस्थित होकर ही अलौकिक कार्य करते हैं, जिस प्रकार स्तनचूषण द्वारा पूतना का प्राणहरण, अति कोमलपद प्रहार से सकटभंग सप्तमवर्ष के समय एक हस्त से गोवर्द्धन धारण प्रभृति मनुष्य का प्रदर्शन करते हैं। जिनके नयन युगल विकसित पुण्डरीक तुल्य मनोहर हैं। नवीन नील नीरद के समान कान्ति, विद्युत के समान उज्जवल पीताम्बर परिधान, वनमाला से शोभित गलदेश, मौनमुद्रायुक्त, द्विभुज विशिष्ट मनुष्याकार उन भगवान् का ध्यान करें।।१५।।

एवमुक्तं, नारदपंचरात्रे–
निर्दोषपूर्णगुणविग्रह आत्मतन्त्रो निश्चेतनात्मकशरीर–
गुणैश्च हीनः। आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिः
सर्व्वत्र च स्वगतभेदविवर्जितात्मा।।इति।।१७।।
अथ नित्यलक्ष्मीकत्वं, यथा विष्णुपुराणे।
नित्यैव सा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी।
यथा सर्व्वगतो विष्णु स्तथैवेयं द्विजोत्तम।।इति।।१।८।१५।।

पश्यंस्तानेवानुविधावति इति तद्भेदनिषेधकश्रुति व्याकोपात्। नान्त्यः। प्रत्याख्येयनैर्गुण्यापत्तेरिति चेत्तत्र समाधि र्न भिन्ना इति। भेदाभावेऽपि विशेषाद्भेदकार्य्यमस्ति इति न नैर्गुण्यापत्तिः। विशेषश्च भेदप्रतिनिधि र्न भेदः। नन्वेवं कुत्रदृष्टं तत्राह। यस्मात् काल इति। आदिनासत्तासतीत्यादिसंग्रहः। अत्र कालस्य कालाश्रयत्वं सत्तायाश्च सत्त्वाश्रयत्वं, भेदाभावेपि यथा प्रतीयते तथा प्रकृतेऽपीत्यर्थः। अत्राधिकंतु सुसूक्ष्मात् गोविन्द भाष्यादधिगन्तव्यम्।।१६।।

निर्दोषेति। मुग्धत्वादिदोषशून्यः सार्व्वज्ञ्यादिगुणपूर्णो विग्रहो यस्य

सम्प्रति प्रश्न यह है कि विभु चैतन्यानन्दत्वादि धर्म समूह ईश्वर से पृथक् है अथवा नहीं ? वे सब उनसे पृथक् नहीं हैं, इसे अभिप्राय से कहते हैं, धर्मपदार्थ–धर्मिपदार्थ से भिन्न नहीं है, किन्तु भेद न होने पर भी विशेष हेतु वशतः भेदमान होता है, जिस प्रकार 'काल सर्वदा है' इसमें अभेद में भेदबुद्धि विद्वद्गण की होती है। अर्थात् जिस प्रकार 'काल सर्वदा है' इस प्रयोग से काल सर्वकाल में ही है, अर्थ बोध होता है, इसमें काल की आधारता एवं काल की ही आधेयता है। सुतरां काल एक पदार्थ होने पर भी भेदमान मात्र विशेष बोधक है, उस प्रकार ईश्वर के विभुत्वादि धर्म समूह उनसे भिन्न नहीं है, भेदमान मात्र विशेष बोध का हेतु है।।१६।।

इस प्रकार नारदपंचरात्र में कथित है–जो मुग्धत्वादि दोष

विष्णोः स्युः शक्तय स्तिस्र स्तासु या कीर्त्तिता परा।
सैव श्री स्तदभिन्नेति प्राह शिष्यान् प्रभु र्महान्।।
तत्र त्रिशक्तिर्विष्णुः, यथा श्वेताश्वतरोपनिषदि।
परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।।
।। इति ।।६।८।
प्रधान क्षेत्रज्ञपति र्गुणेशः इति च।।१८।६।१६।

स भगवान् विष्णुः, किं मायिनामिवविशुद्ध सत्तात्मकस्तस्य विग्रह स्तत्राह, निश्चेतनात्मकेति। चिद्विग्रहो विशेषाच्चिद्गुणकतया प्रतीत इत्यर्थः। किं सांख्यानामिव चिदेकधातु स्तत्राह आनन्दमात्रेति चिदानन्दविग्रह इत्यर्थः। किं विष्वक्सेनानुयायिनामिव देहदेहिभेदवान् तत्राह सर्व्वत्रेति। देहदेहिभावे गुणगुणिभावे च स्वगत भेदेनापि रहित इत्यर्थः। त्रिविधो हि भेदः। आम्रः पनसो नेति सजातीय भेदः, आम्रः पाषाणो नेति विजातीयभेदः, आम्र–पुष्पाणि आम्रो न इति स्वगतो भेदः।।१७।।

नित्यैवेति। अनपायिनी नित्यसम्बन्धा स्वरूपानुबन्धिनीत्यर्थः। एतत् प्रतिपादयितुं विष्णोः स्युरिति। ननु क्वचिन् नित्यमुक्तजीवत्वं लक्ष्म्याः स्वीकृतं,

---

शून्य, सर्वज्ञत्वादि गुणपूर्ण विग्रह विशिष्ट एवं निश्चेतनात्मक जड़ शरीर में स्थित गुण समूह रहित हैं, अतएव जिनके हस्तपद मुख उदरादि समस्त ही आनन्द मात्र हैं, सुतरां सर्वत्र ही स्वगत भेद विवर्जित आत्मस्वरूप है अर्थात् प्राकृत वस्तुमात्र ही स्वजातीय, विजातीय, स्वगतभेद विशिष्ट हैं, किन्तु भगवान् के विग्रह केवल आनन्दमात्र ही हैं, सुतरां उक्त भेद समूह की सम्भावना इनमें नहीं है।।१७।।

अनन्तर भगवान् की नित्यलक्ष्मी विशिष्टता का प्रदर्शन करते हैं। विष्णु पुराण में कथित है—भगवान् विष्णु की नित्य शक्ति जगन्माता लक्ष्मीदेवी श्रीभगवान् के सहित नित्य सम्बन्धान्वित हैं। भगवान् जिस प्रकार सर्वव्यापक हैं उनकी शक्ति भी उस प्रकार है।

श्रीविष्णुपुराणे च–

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा।

अविद्याकर्म्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते।।इति।।६।७।६१।

परैवविष्ण्वभिन्ना श्रीरित्युक्तं, तत्रैव।

कलाकाष्ठानिमेषादि कालसूत्रस्य गोचरे।

यस्य शक्ति र्न शुद्धस्य प्रसीदतु स नो हरिः।।१।९।४४।

तत्राह प्राहेति। नित्यैवेति पद्ये, सर्व्वव्याप्तिकथनेन कला काष्ठेत्यादि पद्यद्वये, शुद्धोपीत्युक्त्याच महाप्रभुना स्वशिष्यान् प्रति लक्ष्म्यां भगवदद्वैतमुपदिष्टं। क्वचिद्यत्तस्यास्तु द्वैतमुक्तं तत्तुतदाविष्टनित्यमुक्तजीवमादायसङ्गतमस्तु। परास्येति। स्वाभाविकी वह्न्युष्णता इव स्वरूपानुबन्धिनी, ज्ञानबलक्रिया, सम्वित् सन्धिनी ह्लादिनी रूपा क्रमाद्बोध्या।।१८।।

विष्णुशक्तिरिति। अविद्येति कर्म्मेति च संज्ञा यस्याः सा अन्या तृतीयाशक्ति स्त्रिगुणा मायेत्यर्थः। कलेति कलादिलक्षणो यः कालस्तदेवसूत्रं जगच्चेष्टानियामकत्वाद्रज्जुः तस्य गोचरे विषये यस्यपराख्याशक्तिर्नास्ति,

पुनर्वार उक्तार्थ का प्रतिपादन करते हैं–भगवान् विष्णु की तीन शक्ति हैं, उनमें जो पराशक्ति है उन्हें ही लक्ष्मी कहते हैं एवं आप ही श्रीविष्णु से अभिन्ना हैं। यह उपदेश श्रीचैतन्य महाप्रभु ने निज शिष्य को दिया था। भगवान् की उक्त शक्ति के विषय में प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। श्वेताश्वतर में उक्त है–भगवान् विष्णु की स्वाभाविकी विविध शक्ति श्रुत है, जिस प्रकार अग्नि की उष्णता शक्ति है, उस प्रकार ज्ञानबल क्रियारूपा शक्ति उनकी स्वाभाविकी है अर्थात् स्वरूपानुबन्धिनी है, ये तीन शक्ति ही क्रमशः सन्धिनी सम्वित् ह्लादिनीरूपा होती है।।१८।।

विष्णु पुराण में उक्त है–भगवान् विष्णु की तीन शक्ति हैं, उसके मध्य में प्रथमा पराशक्ति, द्वितीया अपरा क्षेत्रज्ञ संज्ञिका (जीवशक्ति) तृतीया अविद्या कर्म संज्ञिका है, इसे त्रिगुणात्मिका माया शक्ति कहते हैं। इस श्लोक में जिस पराशक्ति का उल्लेख है, वह

प्रोच्यते परमेशो यो यः शुद्धोप्युपचारतः।
प्रसीदतु स नो विष्णु रात्मा यः सर्व्वदेहिनां इति।।१।६।४५।
एषा परैव त्रिवृदित्यप्युक्तं तत्रैव।
ह्लादिनी सन्धिनी सम्वित् त्वय्येका सर्व्वसंश्रये।
एषा परैव त्रिवृदित्यप्युक्तं तत्रैव।
ह्लादिनी सन्धिनी सम्वित् त्वय्येका सर्व्वसंश्रये।
ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते। ।इति। ।१६।१।१२।६६।

स विष्णुर्नः प्रसीदतु। यः केवलः पराभेदरहितोप्युपचारात् परमेशः प्रोच्यते। पराचासौ मा च लक्ष्मीस्तस्या ईशःस्वामीति निगद्यते इत्यर्थः, यः प्रसिद्धः स नः प्रसीदतु। स्फुटमन्यत्। एषेति। त्रिवृत् त्रैरूप्येण विभाता। ह्लादिनीति। ह्लादात्मापि यया ह्लादते, भवति ह्लादवान् साह्लादिनी। सदात्मापि ययासत्तां धत्ते सा सर्व्वदेशकालव्याप्तिहेतुः सन्धिनी। संविदात्मापि यया संवेत्ति सा सम्वित्। एका विशेषबलनिर्भातभेदकार्य्यापि निर्भेदेत्यर्थः। सत्वांशेन ह्लादकरी, रजोऽंशेन तापकरी, या मिश्रा त्रिगुणा शक्तिः सा त्वयि नो वर्त्तते, कुत इत्यत्राह, गुणवर्ज्जिते माया गुणापृष्टे इत्यर्थः। ।१६। ।

ही श्रीविष्णु से अभिन्ना है, इसका विवरण विष्णु पुराण में ही है। जिनकी पराख्याशक्ति, कलाकाष्ठा निमेषादि कालरूप सूत्र की वशीभूता नहीं है, वे भगवान् हरिः हम सबके प्रति प्रसन्न हों एवं जो शुद्ध अर्थात् पराख्याशक्ति से अभिन्न होने पर भी उपचार से परमेश अर्थात् पराश्रेष्ठमा–लक्ष्मी–उनके ईश स्वामी हैं, जो समस्त देहिगणों की आत्मा हैं, वे भगवान् विष्णु हम सबके प्रति प्रसन्न हों। यह पराख्याशक्ति पुनर्वार तीन प्रकार से भासमाना होती है, यह वृत्तान्त विष्णु पुराण में ही है। यथा ह्लादिनी, सन्धिनी, सम्वित्‌रूप एक पराशक्ति ही आप में निर्भेदरूप में वर्त्तमाना है, आप मायिकगुण

एकोपि विष्णु रेकापि लक्ष्मी स्तदनपायिनी।
स्वसिद्धै र्बहुभि र्वेशै र्बहुरित्यभिधीयते।।
तत्रैकत्वे सत्येव विष्णो र्बहुत्वं, यथा।

श्रीगोपालोपनिषदि—

एको वशी सर्व्वगः कृष्ण ईड्य, एकोपि सन् बहुधा, योऽवभाति। तं पीठस्थं ये तु यजन्ति धीरा—स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषां।।इति।। पू०ता०—२०।

यथा श्रीनारदपञ्चरात्रे, मणिर्यथा विभागेन नील पीतादिभिर्युतः रूपभेदमवाप्नोति ध्यानभेदात् तथा विभुः। इति मणिरत्र वैदूर्य्यम्। नील पीतादय स्तद्गुणाः। एवं एकमेव परंतत्त्वं पुरुषोत्तमतया स्त्र्युत्तमतया च द्वेधा प्रकाशते। तस्य तस्याश्च वैदुर्य्यमणिवत् बहूनि रूपाणि सन्तीत्याह एकोपि इति। स्वसिद्धैः स्वरूपानुबन्धिभिः। वेशैः संस्थानैः र्व्वहु र्व्वह्वी चोच्यते।। एको इति। बहुधा

वर्जित हैं, आप में ह्लाद तापकारिणी मिश्राशक्ति नहीं रहती है अर्थात् त्रिगुणात्मिका मायाशक्ति, आप में नहीं रहती है, कारण त्रिगुणात्मिक मायिक गुण, आपको स्पर्श नहीं कर सकता है, उसका प्रभाव बद्ध जीवों पर पड़ता है।।१६।।

भगवान् विष्णु एक होकर भी एवं उनकी अव्यभिचारिणी शक्ति लक्ष्मीदेवी एक होने से भी उभय ही अनेकानेक रूप धारण करते हैं। इसको कहते हैं—एकमात्र भगवान् विष्णु एवं उनमें नित्य सम्बद्धा लक्ष्मीदेवी, उभय एक होकर भी स्वरूपानुबन्धि अनेकानेक वेश के द्वारा प्रतीयमान होते हैं। तन्मध्य में भगवान् विष्णु एक होकर भी अनेक रूप होते हैं, इसका विवरण श्रीगोपालतापनी में है। 'सर्वगामी, वशी एकमात्र श्रीकृष्ण ही सबके पूज्य हैं। जो एक होकर भी अनेक प्रकार से दृष्ट होते हैं अर्थात् मत्स्य, कूर्मादि रूप में भी समान होते हैं, जो पीठ मध्यस्थित उनकी पूजा करते हैं वे शाश्वत सुख के अधिकारी होते हैं। अपर कोई भी उक्त सुख के अधिकारी नहीं होते हैं। अनन्तर लक्ष्मीदेवी का बहुरूपत्व को दर्शाते हैं,

।। अथ लक्ष्म्यास्तद् यथा।।

परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते।।इत्यादि।।२०।६।८।श्वेता०।
पूर्त्तिः सार्व्वत्रिकी यद्यप्यविशेषा तथापि हि।
तारतम्यञ्च तच्छक्तिव्यक्त्यव्यक्तिकृतं भवेत्।।
तत्र—विष्णोः सार्व्वत्रिकी पूर्त्ति र्यथा वाजसनेयके।
पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।इति।।५।१।१।

मत्स्यकूर्म्मादिरूपप्राकट्येन।। अथेति। तद्वहुत्वं।। परास्येति विविधा जानकी रुक्मिण्यादि रूप प्राकट्येन नानारूपा।।२०।।

विष्णो र्लक्ष्म्या श्चावतारेषु पूर्त्ति र्यद्यपि तुल्या तथापि गुण प्राकट्यतारतम्यादंशांशिभावो प्यस्तीत्याह पूर्त्तिरिति। सार्व्वत्रिकी सर्व्वेष्ववतारेषु वर्त्तमाना अविशेषा तुल्या।। पूर्णमिति अदोऽवतारिरूपं, इदं अवताररूपं, उभय पूर्ण सर्व्वशक्तिमत्, पूर्णादवतारिरूपात् पूर्णमवताररूपं लीलाविस्ताराय स्वयमुदच्यते प्रादुर्भवति।

श्वेताश्वर उपनिषद् में उक्त है, 'भगवान् विष्णु की पराशक्ति विविध प्रकार से विराजित हैं अर्थात् जानकी रुक्मिणी प्रभृति नानाविध रूप में विराजित हैं।।२०।।

पूर्वोक्त क्रम में भगवान् विष्णु की एवं लक्ष्मीदेवी की अवतार हेतु बहुरूपत्व प्रतिपादन के अनन्तर उभय की निज—निज अवतार निकर में पूर्णता यद्यपि तुल्या है, तथापि केवल प्राकट्य के तारतम्य से ही अंशाशिभाव होता है। इसका प्रतिपादन करते हैं—यद्यपि अवतार मात्र में ही अविशेष पूर्णता वर्त्तमान है, तथापि शक्ति का प्रकाश, अप्रकाशरूप तारतम्य से अवतारगत तरतमता अवश्य ही होती रहती है, उसमें से भगवान् विष्णु की सर्व अवतारों में पूर्णता का प्रदर्शन करते हैं, वाजसनेय श्रुति कहती है, 'पूर्ण यह अवतारी रूप, पूर्ण यह अवतार रूप, उभय ही पूर्ण है अर्थात् सर्वशक्तिमान् हैं।

महावाराहे च–

सर्व्वे नित्याः शाश्वताश्च देहा स्तस्य परात्मनः।
हानोपादानरहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचिद्।।
परमानन्दसन्दोहा ज्ञानमात्राश्च सर्व्वतः।
सर्व्वे सर्व्वगुणैः पूर्णाः सर्व्वदोषविवर्जिताः।।इति।।२१।।

अथ श्रियः सा यथा श्रीविष्णु पुराणे–

एवं यथा जगत्स्वामी देवदेवो जनादर्दनः।
अवतारं करोत्येष तथा श्रीस्तत्सहायिनी।।

तल्लीलापूर्त्तौ पूर्णस्यावताररूपस्य पूर्णं स्वरूपमादाय स्वस्मिन्नैक्यं नीत्वा पूर्णमवतारिरूप मन्यत्राविलीन सदवशिष्यते तिष्ठतीत्यर्थः।। अत्र ऐक्यमुक्तं पार्थक्येनस्थिति श्चोच्यते तदिदं यथेष्टं बोध्यं। सर्व्वे इति। शाश्वताः जगति पुनः पुनराविर्भाविनः देहाः स्वरूपानुबन्धिनो विग्रहाः, स्वरूपानुबन्धित्वादेव हानेन उपादानेन च वर्ज्जिताः।। स्फुटार्थ मन्यत्।।२१।।

किन्तु लीला विस्तार हेतु पूर्ण अवतारी रूप से पूर्ण अवतार रूप प्रकट होता है। पूर्णस्वरूप ग्रहण पूर्वक अवतार होने पर भी अवतारी रूप, परिपूर्ण रूप में ही अवस्थित होता है अर्थात् एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण ही लीला विस्तार द्वारा लोक–शिक्षा के निमित्त नानाविध अवतार का प्रकाश करते हैं, वे अवतारगण–सर्वशक्तिमान् होते हैं, किन्तु पूर्णतम स्वरूप श्रीकृष्ण से ही पूर्णता एवं सर्वशक्तिमत्ता ग्रहण कर ही पूर्ण एवं सर्वशक्तिमान् होते हैं। अतएव श्रीकृष्ण ही एकमात्र अवतारी रूप वस्तु हैं, उनमें समस्त अवतारगण लीन रहते हैं। महावाराह पुराण में कथित है–उन परमात्मा भगवान् के लीलार्थ जगत् में प्रकाशित देह समूह शाश्वत हैं, उनके देह समूह प्राकृत नहीं हैं, अतः हानि उपादान रहित हैं एवं ज्ञानमय परमानन्द आकृति विशिष्ट देह समूह सर्वगुण परिपूर्ण हैं, सुतरां समस्त दोष शून्य हैं।।२१।।

पुनश्चपद्मादुद्भूता आदित्योऽभूद्यदा हरिः।
यदाच भार्गवो राम स्तदाभूद्धरणी त्वियं।।
राघवत्वेऽभवत् सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि।
अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषा सहायिनी।।
देवत्वे देवदेहेयं मानुषत्वे च मानुषी।
विष्णो र्देहानुरूपां वै करोत्येषात्मन स्तनुं।।
।। इति ।।१।६।१४०।१४३।
स्यात् स्वरूपसती पूर्त्ति रिहैक्यादिति विन्मतं।।२२।।

अथेति। सा पूत्तिः। तामुदाहरति एवं यथा इति। प्रकटार्थ। देवत्वे इति। करोति प्रकटयति।। स्यात् इति। एषुवाक्येषु सैव सर्व्वत्रेति सर्व्वेषां प्रादुर्भावानां अभेदान् सर्व्वेषु तेषु स्वरूपसती पूर्त्ति रस्त्येवेति श्रुरि, युक्तिविदां मतं इत्यर्थः। अन्यथा स्वरूपपूर्त्ते रभावे तदभेदो गौणःस्यात्।।२२।।

जिस प्रकार समस्त अवतारों में श्रीविष्णु की पूर्णता प्रदर्शित हुई, उस प्रकार लक्ष्मीदेवी को भी समस्त अवतारों में पूर्णता है, उसको कहते हैं। विष्णु पुराण में उक्त है—देव देव जगत् स्वामी जनार्दन जब—जब जिस प्रकार अवतार प्रकट करते हैं, तत् सहायिनी लक्ष्मीदेवी भी उस प्रकार अवतार प्रकट करती हैं, जब भगवान् हरिः ने आदित्यमूर्त्ति धारण की थी, तब आप भी पुनर्वार पद्म उद्भूता हुई थीं। जब भगवान् भार्गव रूप में अवत्तीर्ण हुए, तब आप धरणी मूर्त्ति में प्रकट हो गयीं, दशरथनन्दन श्रीरामरूप धारण करने पर सीता होकर आविर्भूत हुईं, श्रीकृष्ण अवतार में रुक्मिणी होकर प्रकट हुईं एवं अन्यान्य अवतारों में श्रीविष्णु की सहायिनी होती हैं। जब भगवान् देवमूर्त्ति में प्रकट होते हैं, तब देवरूपा, मानव रूप में आविर्भूत हो मनुष्य मूर्त्ति प्रकट करती हैं, इस प्रकार भगवान् जब जिस प्रकार मूर्त्ति धारण करते हैं, लक्ष्मीदेवी भी उस समय उनके अनुरूप स्वीय मूर्त्ति को प्रकट करती हैं। पूर्वोक्त क्रम से भगवान् विष्णु एवं लक्ष्मीदेवी की अवतारगण में जो पूर्णता निर्णीत हुई है,

अथ तथापि तारतम्यं।

तत्र श्रीविष्णोस्तद्यथा श्रीभागवते–

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयं।।इति।।
अष्टमस्तु तयोरासीत् स्वयमेव हरिः किल।।इति च।।२३।।

अथ श्रिय स्तद्यथा पुरुषबोधिन्यामथर्व्वोपनिषदि–

'गोकुलाख्ये माथुरमण्डले' इत्युपक्रम्य, 'द्वेपार्श्वे चन्द्रावली राधिकाच' इत्यभिधाय परत्र, 'यस्या अंशे लक्ष्मीदुर्गादिका शक्तिः'।।इति।।

अथेति। यद्यप्यविशेषा पूर्त्तिरस्ति तथापि तारतम्यमंशांशिभावोप्यस्ति इत्यर्थः।। एतेचेति। एते चतुर्विंशतिः पुंसो गर्भोदशायिनोऽंशकलाः कथिताः। तन्मध्यपठितः श्रीकृष्णस्तु स्वयं भगवान् अनन्यापेक्षिरूपो मूलमित्यर्थः।। तयो र्देवकी वसुदेवयोः।।२३।।

अथेति। श्रियस्तत्तारतम्यं।। गोकुलाख्य इति। अत्रांशिन्याः श्रीराधायाः लक्ष्म्यादयोऽंशा इत्यर्थो विस्फुटः। दुर्गात्र मन्त्र राजाधिष्टात्री, नतु

वह स्वरूप पूर्णता है या नहीं ? इस सन्देह से कहते हैं अवतार समूह के अभेद हेतु उक्त पूर्त्ति, स्वरूप पूर्त्ति है। यह मत श्रुति युक्ति निपुण विद्वद्गणों के हैं।।२२।।

अवतारगणों के स्वरूप पूर्त्ति में यद्यपि कुछ विशेषता नहीं है, तथापि परस्पर तारतम्य है अर्थात् अंशांशिभाव शास्त्र सिद्ध है, इसके प्रतिपादन के लिए प्रथमतः भगवान् विष्णु के अवतारगणों में अंशांशिभाव का प्रदर्शन करते हैं। श्रीमद्भागवत में उक्त है—पूर्वोक्त चतुर्विंशति अवतारों का वर्णन हुआ है, वे सब ही गर्भोदकशायी पुरुष के अंश व कलामूर्त्ति हैं, किन्तु उनमें उक्त श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं अर्थात् अन्य की अपेक्षा शून्य है, स्वयं ही समस्त अवतारों के मूल हैं। आगे भी कहा है—उन वसुदेव देवकी के अष्टम पुत्र स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण आविर्भूत हुए थे।।२३।।

इस प्रकार विष्णु के अवतारों में तारतम्य प्रदर्शन के अनन्तर

गौतमीयतन्त्रे च–

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता।
सर्व्वलक्ष्मीमयी सर्व्वकान्तिः संमोहिनी परा।।इति।।२४।।
अथ नित्यधामत्वं आदिशब्दात्, यथा छान्दोग्ये।
स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठितः।।इति।। स्वेमहिम्नि।।इति।।

प्राकृती देवीति। राधिका देवी परेत्यन्वयः। अतः कृष्णमयी कृष्णात्मिका, तथापि परदेवता कृष्णार्च्चिका सर्व्वलक्ष्मीमयी, पुरुषबोधिनीश्रुतेः, निखिलानां लक्ष्मीणामंशिनी, सर्व्वासां तासां कान्तिरिच्छा पूज्यत्वाभिलाषो यस्यां सा, सम्मोहिनी कृष्णानुरञ्जिका।।२४।।

'नित्यलक्ष्म्यादिमत्त्वा' दित्यत्रादिपदग्राह्यमाह। भगवः भगवन् हे सनत्कुमार सभूमाख्योहरि रित्यादि प्रश्नः, स्वेमहिम्नीति तदुत्तरं।। दिव्य इति।

श्रीलक्ष्मीदेवी के अवतारों के तारतम्य को कहते हैं, पुरुषबोधिनी अथर्व उपनिषद् में उक्त है–प्रथमतः 'गोकुलाख्य माथुर मण्डले' इत्यादि उपक्रम पूर्वक उभय पार्श्व में चन्द्रावली, राधिका स्थित हैं, यह कहने के पश्चात् कहते हैं–जिनकी अंशभूता शक्ति लक्ष्मी व दुर्गादिका शक्ति हैं अर्थात् श्रीराधिका ही अंशनी है और लक्ष्मी दुर्गा प्रभृति समस्त शक्ति ही उनकी अंशभूता हैं। यहाँ दुर्गा शब्द से सामान्य प्राकृत देवी का ग्रहण नहीं होता है, किन्तु जो मन्त्रराजाधिष्टात्री देवी हैं वह ही दुर्गा शब्द से श्रीराधिका के अंश अवतार रूप में परिगृहीता होती हैं।

गौतमीयतन्त्र में भी लिखित है–'कृष्णात्मिका परदेवता राधिकादेवी ही सर्वलक्ष्मीमयी अर्थात् समस्त लक्ष्मी ही श्रीराधिका की अंशभूता हैं, श्रीराधा ही एकमात्र अंशिनी हैं एवं लक्ष्मी समूह की कान्तिरूपा हैं। अतएव सर्वापेक्षा श्रेष्ठा श्रीकृष्णानुरंजिका हैं।।२४।।

इत्यादि प्रमाण निवह के द्वारा भगवान् की नित्य लक्ष्मी

मुण्डके च–

दिव्ये पुरे ह्येष संव्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः।।इति।।२।२।७।

ऋक्षु च–

तां वां वास्तून्युश्मसि गमध्ये यत्र गावो भूरिशृङ्गाः अयासः।।
।।अत्राह।।१।१५४।६।

तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि।।इति।।२५।।

श्रीगोपालोपनिषदि च–

तासां मध्ये साक्षाद्ब्रह्म गोपालपुरी हि।।इति।।उ० ३६।

पुरे विचित्र प्रासादादिशालिनि।। तामिति तां तानि वां युवयो राधिका कृष्णयोर्व्वास्तूनि गृहानि गमध्ये प्राप्तुं उस्मसि कामयामहे। यत्र येषु गावो भूरि शृङ्गाः प्रशस्तविषाणाः सन्ति। अयासः शुभावहविधिरूपाः, 'अयः शुभावहोविधि रित्यमरः' वाञ्छितदात्र्यइत्यर्थः।। अत्रार्थे श्रुतिराह। वृष्णःभक्तेच्छावर्षिणः कृष्णस्यतत् परमं पदं भूरि प्रचुर मवभाति नास्त्यस्य सख्येत्यर्थः।।२५।।

विशिष्टता प्रदर्शित हुई है, किन्तु सम्प्रति पूर्वोक्त 'जो नित्य लक्ष्यादि विशिष्ट हैं' यह आदि पर से जो–जो परिगृहीत हुई हैं, उस सबका क्रमशः प्रतिपादन के लिए प्रथमतः नित्य धामत्व का प्रतिपादन करते हैं अर्थात् भगवान् जहाँ पर नित्य विराजित हैं उस धाम समूह का विनाश नहीं है, वे सब नित्य होते हैं। छान्दोग्योपनिषद् में उक्त है। प्रश्न–हे भगवन् ! वह भूमाख्य हरिः कहाँ प्रतिष्ठित हैं ? उत्तर–स्वीय असाधारण महिमा पुर में।।'

मुण्डकोपनिषद् में उक्त है–'आत्मास्वरूप भगवान् द्योतनात्मक स्वीय पुर में प्रतिष्ठित हैं। ऋक् मन्त्र में उक्त है–हम सब आपके गृह समूहों में पहुँचने के अभिलाषी हैं, जहाँ प्रशस्त शृंग विशिष्ट वांछितार्थ फलप्रद मंगलमय धेनु समूह विराजित हैं। पुनश्च एतद्विषय में श्रुति प्रमाण उठाते हैं–भक्तेच्छावर्षणकारी श्रीकृष्ण का वह परमपद प्रचुर रूप से अवभात हो रहा है अर्थात् असंख्य–असंख्य स्थान समूह निरन्तर देदीप्यमान हो रहे हैं।।२५।।

जितन्ते स्तोत्रे च–

लोकं वैकुण्ठनामानं दिव्यषाड्‌गुण्य संयुतं।
अवैष्णवानामप्राप्यं गुणत्रयविवर्जितं।।
नित्यसिद्धैः समाकीर्णं तन्मयैः पाञ्चकालिकैः।
सभाप्रासादसंयुक्तं वनै श्चोपवनैः शुभं।।
वापीकूपतड़ागैश्च वृक्षषण्डैः सुमण्डितं।
अप्राकृतं सुरै र्वन्द्यमयुतार्क समप्रभं।।इति।।

ब्रह्मसंहितायाञ्च–

सहस्रपत्रं कमलं गोकुलाख्यं महत्पदं।
तत्कर्णिकारं तद्धाम तदनन्तांश सम्भवं।।इति।।२६।५।२।

तासामिति। सप्तानां पुरीणांमध्ये गोपालस्यपुरी मथुरा साक्षाद्‌ब्रह्म, तत्पराख्यशक्तिरूपत्वेन तादूप्यात् अभिव्यक्तबृहद्‌गुणत्वाच्च।। लोकमित्यादि प्रस्फुटार्थं।। पाञ्चकालिकैरिति। अभिगमनोपादानेज्याध्ययनसमाधयः पञ्चकालास्तत् परायणै रित्यर्थः। सहस्रेति महतः स्वयं भगवतः पदं स्थानं, 'पदं व्यवसितित्राणस्थान लक्ष्माङ्‌घ्रिवस्तुषु इत्यमरः। अनन्तस्य संकर्षणस्यांशेन सम्भवः प्राकट्यं अनादितो यस्यतत्।।२६।।

श्रीगोपालतापनी में लिखित है–उन सप्तपुरियों के मध्ये गोपालपुरी मथुरा साक्षात् ब्रह्मस्वरूपा है, धाम पराशक्ति विलसित है। अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिकापुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः।। जितन्तस्तोत्र में लिखित है–दिव्यषाड़् गुण्य संयुत, गुणत्रय विरहित वैकुण्ठ नामक जो लोक है वह लोक अवैष्णवों को अप्राप्य है, मायिक सत्त्व रज तम गुणत्रयों से वर्जित है, पाञ्चकालिक अर्थात् अभिंगमन उपादान इज्या अध्ययन समाधि को पञ्चकाल कहते हैं, अनुष्ठान परायण व्यक्तियों के द्वारा समाकीर्ण हैं, सभा प्रासाद संकुल, वन उपवन वापी कूप तड़ाग वृक्षषण्ड समूह द्वारा समण्डित, अप्राकृत एवं अयुत–अयुत आदित्य के समान प्रभाशाली हैं

प्रपञ्चे स्वात्मकं लोकमवतार्य्य महेश्वरः।
आविर्भवति तत्रेति मतं ब्रह्मादिशब्दतः।।
गोविन्दे सच्चिदानन्दे नरदारकता यथा।
अज्ञै र्निरूप्यते तद्वद्धाम्नि प्राकृतता किल।।२७।।

ननु महिमादि शब्दवाच्यं हरेः पदं प्रकृतिमण्डलाद्वहिः श्रुतं, तन्मण्डलान्तःस्थं मथुरादि तस्यपदमित्येतत् कथं तत्राह प्रपञ्चेइति। लोकस्य स्वात्मकत्वे हेतुः ब्रह्मादिशब्द इति। आदिना महिमसंव्योमशब्द संग्रहः। एवं तर्हि मथुरादौ प्राकृतत्वं कुतः स्फुरित तत्राह गोविन्द इति। नरदारकता प्राकृतमनुष्य बालकता।।२७।।

एवं देवगण द्वारा वन्दनीय हैं, ब्रह्मसंहिता में उक्त है—साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण के गोकुलाख्य जो स्थान हैं वह सहस्रपत्र पद्म का स्वरूप है, तन्मध्ये में कर्णिका रूप धाम भगवान् संकर्षण के अंश से समद्भूत है।।२६।।

इस भगवान् के धाम समूह का नित्यत्व प्रतिपादन के अनन्तर पूर्वोक्त 'असाधारण महिमा पुर में प्रतिष्ठित है' इत्यादि स्थल में महिमा रूप धाम का नित्यत्व होना सम्भव है, किन्तु मथुरा मण्डलादि धाम समूह प्रपंच में दृष्ट होते हैं, उसका नित्यत्व किस प्रकार सम्भव होगा ? इसके उत्तर में कहते हैं, भगवान् प्रथमतः आत्मस्वरूपभूत अर्थात् सन्धिनी शक्ति सम्भूत निज अवस्थान योग्य धाम को प्रपंच के मध्य में अवतारण पूर्वक उस धाम में अवत्तीर्ण होते हैं। ब्रह्मादि शब्द के द्वारा धाम समूह कथित होने से स्पष्टतः वैसा बोध होता है अर्थात् सप्तपुरी की गोपालपुरी मथुरा साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है, इत्यादि स्थल में मथुरापुरी को साक्षात् ब्रह्म कहा गया है, अतः मथुरा मण्डलादि धाम समूह प्रपंचगत होकर भी उनका स्वरूपभूत चिन्मय नित्य पदार्थ होने में कोई सन्देह नहीं है, यह ही पण्डित मण्डलियों का अभिमत है, किन्तु जो लोक अत्यन्त अज्ञ होते हैं वे ही मात्र सच्चिदानन्द भगवान् गोविन्द में प्राकृत बालक बुद्धि रखते हैं,

अथ नित्यलीलत्वञ्च। तथाहि श्रुतिः।
यद्गतं भवच्च भविष्यच्च।।इति।।बृह० ३।८।३।
एकोदेवोनित्यलीलानुरक्तो भक्तव्यापी भक्त हृद्यन्तरात्मा।।इति च।।

स्मृतिश्च–
जन्म कर्म्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्ज्जुन।।इति।।२८।४।६।

अथेति। यदिति बृहदारण्यके। यद्गतं ब्रह्मनिष्ठं गुणकर्म्म नित्यं, गतभवत्भविष्यच्छब्दैस्तस्य त्रैकालिकत्वप्रत्ययात्। एकोदेव इति। पिप्पलादशाखायां। अत्र लीलायाः नित्यत्वं वाचनिकं। जन्मेति श्रीगीतासु। दिव्यमप्राकृतं नित्यमिति यावत्।।२८।।

उस धाम में प्राकृत बुद्धि वे सब करते हैं जो लोक भगवद् भक्ति विज्ञ, सुधीर व्यक्ति हैं, वे सब कभी भी भगवान् के लीलार्थ पृथ्वी में प्रकाशित विग्रह, धाम समूह पदार्थ में प्राकृत बुद्धि नहीं रखते हैं, चिन्मय एवं नित्य देखते हैं। अर्वाचीन पाषण्डगण ही अज्ञानाच्छन्नदृष्टि वशतः भगवद् विग्रह एवं भगवद् सम्बन्धी वस्तु समूह में प्राकृत बुद्धि करते हैं।।२७।।

अनन्तर भगवान् लीला भी नित्य है, इस विषय में प्रमाण उपस्थित करते हैं। बृहदारण्यक श्रुति कहती है—ब्रह्मनिष्ठ गुण समूह नित्य है, अतीत वर्तमान भविष्यत् कालत्रय में ही भगवान् की लीला विराजमान है, किसी भी समय विनष्ट नहीं होती है, सुतरां यह नित्य है। वेद की पिप्पलाद शाखा में उक्त है—एकमात्र वह भगवान् नित्यलीलानुरक्त हैं, भक्त व्यापक एवं भक्तगण के हृदय में साक्षात् रूप में विराजित हैं। श्रीभगवद्गीता में उक्त है—

हे अर्जुन ! मेरा जन्म अर्थात् आविर्भाव एवं कर्म को जो व्यक्ति अप्राकृत, नित्य मानता है वह व्यक्ति स्थूल सूक्ष्म उभयविध

रूपानन्त्याज्ज्ञानानन्त्याद्धामानन्त्याच्च कर्म्म तत्।
नित्यं स्यात्तदभेदाच्चेत्युदितं तत्त्ववित्तमैः।।२६।।

ननु लीलाया नित्यत्वं शब्दात् प्रतीतं, युक्तिविरहात्तदपुष्टमिति चेत्तत्राह रूपानन्त्यादिति। अत्राहुः लीलायाः क्रियात्वात् प्रत्यवयवमप्यारम्भ समाप्तिभ्यां तस्याः सिद्धि र्वाच्या, ताभ्यां विना न तस्याः स्वरूपं सिद्धेत्। तथाचारम्भसमाप्तिमत्तया विनाशित्वध्रौव्यात् कथं सा नित्येति चेदुच्यते। परात्मनः सदैवाकारानन्त्यात् पार्षदानन्त्यात् स्थानानन्त्याच्च नानित्यत्वं तस्याः, तत्तदाकारगतयोस्तत्तदारम्भ समाप्त्योः सत्त्वेप्येकत्रैकत्र तत्तत्क्रियावयवा यावत् समाप्यन्ते न समाप्यन्ते वा, तावदेवान्यत्रान्यत्राप्यारब्धाः स्यु रित्येवमविच्छेदान्नित्यत्वं सिद्धं। ननु मास्तु विच्छेदः। पृथगारम्भादनैवसेतिचेदुच्यते समयभेदेनाभ्युदितानामप्येकरूपाणां क्रियाणामैक्यं। यथा चोक्त द्विःपाको ऽनेन कृतौ नतु द्वौ पाकाविति द्विर्गोशब्दोयमुच्चरितो नतौ द्वौ गोशब्दाविति

शरीर को त्यागकर मुझको प्राप्त करते हैं। जन्म–मरणरूप संसार यातना को प्राप्त नहीं करता है।।२८।।

भगवान् के रूप, पार्षद, धाम–अनन्त एवं नित्य होने से एवं अवतारगण की परस्पर अभिन्नता हेतु उनके लीलादि कर्म नित्य हैं, तत्त्व विद्वद्गण इसको मानते हैं अर्थात् भगवान् लीला प्रकट करते समय जो रूप प्रकट करते हैं वह रूप जिस प्रकार नित्य सिद्ध हैं, उस प्रकार उनकी समस्त लीलायें भी नित्य हैं, कभी भी विनष्ट नहीं होती हैं, यद्यपि आरम्भ परिसमाप्ति रूप लीला का स्वरूप है, अतएव जब जो अवतार आविर्भूत होते हैं तब उनकी लीला होती है, अप्रकट अवस्था में लीला नहीं रहती हैं, तथापि लीलानित्य है, उस स्थान में लीला समाप्त होने के पहले ही अन्यत्र आविर्भूत होकर लीला को प्रकट करते हैं अर्थात् अनेक ब्रह्माण्ड हैं, किसी ब्रह्माण्ड में भगवान् अवतार प्रकट करते हैं, किसी ब्रह्माण्ड में लीला अप्रकट होती है, अतः उनका अवतार निरवच्छिन्न नित्यरूप में विराजित है।

।। इति प्रमेयरत्नावल्यां भगवत्पारतम्यप्रकरणं प्रथमं प्रमेयं ।।

अथ द्वितीयप्रमेयम्

अथाखिलाम्नाय वेद्यत्वं, यथा श्रीगोपालोपनिषदि।
योऽ सौ सर्व्वैर्वेदै र्गीयते।।इति।। (उ०ता० २७)

काठके च–

सर्व्वे वेदा यत् पदमामनन्ति तपांसि सर्व्वानि च यद्वदन्ति।।
।। इति।। १।२।१५।

श्रीहरिवंशे च–

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्व्वत्र गीयते।।इति।।१।।

प्रतीतिनिर्णीतशब्दैक्यवदिदं द्रष्टव्यं। तदेतदाह तदभेदाच्चेति। तेषां रूपादीनां चतुर्णां भेदविरहादित्यर्थः।।२६।।

।। इति प्रमेयरत्नावल्यां भगवत्पारतम्यप्रकरणं व्याख्यातम्।।१।।

सर्व्ववेदबोध्यत्वं हरेर्व्वक्तुमाह अथेतियोऽसाविति। यः श्रीगोपालः कृष्णः।। सर्व्वेइति। यत्पदं यद्ब्रह्माख्यं वस्तु, पदं व्यवसितित्राणेत्यादुक्तेः। वेदेरामायणेइतिस्फुटार्थ।।१।।

सुतरां लीला का कभी विच्छेद नहीं है, लीला नित्य है इसमें सन्देह नहीं है।।२६।।

।। इति प्रमेय रत्नावली नामक ग्रन्थ में भगवत् पारतम्य प्रकरण प्रथम प्रमेय।।१।।

वेद के अनेकांश में काम्य कर्म प्रतिपादन है, अतएव उक्त प्रमाणों से श्रीहरिः का प्रतिपादन कैसे सम्भव होगा ? इसके उत्तर में कहते हैं–श्रीगोपाल उपनिषद् में उक्त है, श्रीहरिः ही सब वेदों के

साक्षात् परम्पराभ्यां वेदा गायन्ति माधवं सर्व्वे।
वेदान्ताः किल साक्षादपरेः तेभ्यः परम्परया।।२।।
क्वचिद् क्वचिदवाच्यत्वं यद्वेदेषु विलोक्यते।
कार्त्स्न्येन वाच्यं न भवेदिति स्यात्तत्र सङ्गतिः।।
अन्यथा तु तदारम्भो व्यर्थः स्यादिति मे मतिः।।३।।

ननु वेदेषु कर्म्मप्रतिपादनं भूरि दृष्टं कथमुक्तोदाहरणानि सङ्गच्छेरन्इति चेत् तत्राह साक्षादिति। वेदान्ताः साक्षान्माधवं गायन्ति तेभ्योऽ परेवेदाः कर्म्मकाण्डानि तु परस्परया, तज्ज्ञानाङ्ग हृद्विशुद्धिकरकर्म्मविधानपरीपाट्येति सर्व्ववेद वेद्यत्वं हरेः सूपपन्नम्।।२।।

ननु यतोवाचोनिवर्त्तन्ते इत्यादौ हरेर्वेदावाच्यत्वंदृष्टं तत्र कागतिरिति

द्वारा प्रतिपादित होते हैं। काठके में उक्त है—समस्त देवगण एवं तपस्यागण एकमात्र ब्रह्म वस्तु का ही प्रतिपादन करते हैं एवं श्रीहरिवंश पुराण में कथित है—'वेद रामायण, पुराण, भारत, इतिहास प्रभृति समस्त शास्त्रों के आदि मध्य और अन्त में भगवान् श्रीहरिः ही प्रतिपादित किये गये हैं, इस प्रकार प्रथम प्रमेय में पूर्वोक्त समूह के द्वारा श्रीभगवान् श्रीकृष्ण ही परम वस्तु, उनकी नित्य लक्ष्म्यादि विशिष्टता, धाम एवं लीलादि की नित्यता प्रतिपादित हुई है, प्रस्तुत प्रकरण में उनका वेद वेद्यत्व प्रतिपादन पर श्रुतियों का उल्लेख करते हैं।।१।।

काम्य कर्म प्रतिपादन परत्व का समाधान करते हैं, वेदगण साक्षात् एवं परम्परा क्रम से एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण का ही गान करते हैं, वेदान्त भाग अर्थात् उपासनाकाण्ड साक्षात् रूप से क्रमकाण्ड समूह परम्परा से श्रीहरिः का प्रतिपादन करते हैं अर्थात् कर्म्मकाण्ड भगवज्ज्ञान के अंगभूत चित्तशुद्धि कर्मविधान परिपाटी द्वारा क्रमशः उनके यथार्थतत्व को प्रकाशित करते हैं।।२।।

शब्दप्रवृत्तिहेतूनां जात्यादीनामभावतः।
ब्रह्म निर्धर्म्मकं वाच्यं नैवेत्याहुर्व्विपश्चितः।।४।।

चेत्तत्राहसाक्षादिति क्वचिदिति। दृष्टोपि मेरुः कात्स्न्येना दर्शनाददृष्टो यथोच्यते तद्वत्। अन्यथा सर्व्वथा तदवाच्यत्वे तज्ज्ञानाय वेदाध्ययनारभो निरर्थकः स्यात्।।३।।

शब्देति। निर्व्विशेष ब्रह्मवादिनान्तु, ब्रह्मणि जातिगुणक्रिया–संज्ञानामभावात्तद्वाचिभि र्वेदशब्दै र्न तद्वाच्यं।।४।।

उक्त प्रकार से भगवान् हरिः निखिल वेद वेद्य हैं, लक्ष्य नहीं हैं, प्रतिपादित हुआ, किन्तु 'यतोवाचो निवर्त्तन्ते' जिनको प्राप्त न कर वाणी समूह लौट आती है, इस श्रुति से परस्पर विरोध उपस्थित होता है, अतएव उक्त श्रुति का परस्पर विरोध परिहार के बिना उक्त सिद्धान्त संदिग्ध हो जाता है ? उत्तर में कहते हैं—वेद में कहीं पर 'ब्रह्म अवाच्य है' अर्थात् शब्द उनको प्रतिपादन कर नहीं सकता है, इस प्रकार प्रकरण दृष्ट होता है, उसका तात्पर्य यह है कि वेदगण सम्पूर्ण रूप से भगवान् के महिमागुणादि का वर्णन करने में असमर्थ हैं, इस अभिप्राय से कहा गया है, भगवान् वेदवाच्य नहीं हैं, जिस प्रकार हिमालय को देखकर भी सम्पूर्ण न देखने की असामर्थ्यता के कारण 'उसे नहीं देखा' कहते हैं, उसी प्रकार वेदगण सम्पूर्ण वर्णन करने में असमर्थ होकर अवाच्य कहते हैं। अन्यथा वेदाध्ययनादि आरम्भ व्यर्थ हो जाता है। शास्त्र से ही ईश्वर का ज्ञान होता है, वेद समूह यदि सर्वथा ही परब्रह्म प्रतिपादन में असमर्थ होते हैं तो वेद अध्ययन की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी, स्वतः सिद्ध ईश्वर विषयक ज्ञान नहीं होता है, सुतरां वेदाध्ययन परमावश्यक है, अतएव भगवान् वेदवाच्य ही हैं, वेद का लक्ष्य नहीं हैं, यही मेरा वास्तविक अभिमत है।।३।।

निर्विशेष ब्रह्मवादिगण के मत में ब्रह्म, जाति, गुणक्रिया, संज्ञा रहित हैं, पद के अर्थ चार ही होते हैं, अतएव शब्द प्रवृत्ति के

सर्व्वैःशब्दैरवाच्ये तु लक्षणा न भवेदतः।
लक्ष्यञ्च न भवेद्धर्म्महीनं ब्रह्मेति मे मतं।।५।।

।। इति प्रमेय रत्नावल्यां द्वितीयप्रमेयम्।।२।।

अथ तृतीयप्रमेयम्

स्वशक्त्या सृष्टवान् विष्णु र्यथार्थं सर्वविज्जगत्।
इत्युक्तेः सत्यमेवैतद्वैराग्यार्थमसद्वचः।।

नच लक्षणया वेदशब्दानां तत्र प्रवृत्ते र्न तदारम्भोव्यर्थः इति चेत् तत्राह सर्व्वैरिति। सर्व्वशब्दावाच्यं ब्रह्म त्वया स्वीकृतं। तत्र लक्षणा न सम्भवेत् सोऽयं देवदत्त इत्यत्र पिण्डशब्द वाच्ये पिण्डे भागलक्षणा दृष्टा।।५।।

।। इति प्रमेयरत्नावल्यां हरे र्वेदवेद्यत्वं प्रकरणं व्याख्यातं।।२।।

प्रपञ्चसत्यत्वं वक्तुमाह अथेत्यादिना स्वशक्त्येति। ननु 'तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं जगत्सत्यत्ववादिनां कथं सङ्गच्छेत तत्राह वैराग्यार्थमिति।

हेतुभूत जाति गुण क्रिया संज्ञा–ब्रह्म में न होने से निर्धर्मक ब्रह्म वेदवाच्य नहीं हो सकता है, वह अपदार्थ है।।४।।

कहा जा सकता है कि ब्रह्म वेद का लक्ष्य है अर्थात् वेदगण लक्षणाशक्ति के द्वारा ब्रह्म को कहते हैं, अतः वेदाध्ययनादि निरर्थक नहीं है, इस प्रकार सिद्धान्त भी असंगत है, कारण जो वस्तु सर्वथा ही अवाच्य है, उसका प्रतिपादन लक्षणाशक्ति नहीं कर सकती है। सुतरां उक्त कथन सर्वथा असंगत है। समस्त शब्द के द्वारा अवाच्य ब्रह्म कभी भी लक्षणा नामक शब्द शक्ति के द्वारा प्रतिपादित नहीं हो सकता है। सुतरां ब्रह्म वेदवाच्य है, लक्ष्य नहीं है।।५।।

।। इति प्रमेय रत्नावली में श्रीहरिः का वेदवेद्यत्व प्रकरण नामक द्वितीय प्रमेय।।२।।

तथाहि, श्वेताश्वतरोपनिषदि–

य एकोऽ वर्णो बहुधाशक्तियोगाद्वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति।।इति।।४।२।

श्रीविष्णुपुराणे च–

एकदेशस्थितस्याग्ने र्ज्योत्स्ना विस्तारिणी यथा।
परस्य ब्रह्मणः शक्ति स्तथेदमखिलं जगत्।।इति।।१।२२।५४।

अनित्यजगत्सुखतृष्णापरित्यागार्थमेव नतु तन्मृषात्वार्थं, तत्सत्यत्वे प्रमाणलाभादितिभावः।। स्वशक्त्येत्येतत् प्रमाणयति य इति। य ईश्वरः स्वयमवर्णः ब्राह्मणादिभिन्नः स्वशक्ति योगादनेकान् ब्राह्मणादीन् वर्णान् दधाति उत्पादयतीत्यर्थः। 'वर्णो द्विजादौशुक्लादौ स्तुतौ रूपयशोक्षरे इतिविश्वः यद्वा, स्वयं अवर्णः रूपरहितोऽनेकान् शुक्लादीन् अर्थान् निहितार्थः चेतसि धृतप्रयोजनः। एकदेशेति। परमव्योमनिलयस्य हरेः शक्तिकार्य्यमेतत् तदतिदूरं इदं परिदृश्यमानं जगदिति समुदायार्थः।। यथार्थमिति सर्व्वविदिति च प्रमाणयति, सपर्य्यगादिति। स प्रकृतः परमात्मा परितोऽगात् सर्व्वं व्यापत्, शुक्लमित्याद्याःशब्दाः पुंस्त्वेन विपरिणम्याः स इत्युपक्रमात् शुक्रो दीप्तिमान्,

---

सर्वज्ञ भगवान् विष्णु ने स्वीय शक्ति द्वारा जगत् की सृष्टि की है, यह सृष्टि यथार्थ है, इस उक्ति से जगत् की सत्यता प्रमाणित होती है, 'अशेष जगत् असत् स्वरूप है' इस वाक्यार्थ का समाधान कैसे होगा ? उत्तर–वैराग्य के निमित्त जगत् को मिथ्या कहा गया है अर्थात् वैषयिक विषयसुख में आसक्ति त्याग के निमित्त ही जगत् का मिथ्यात्व प्रतिपादन हुआ है। कारण जगत् सत्य है, इसका प्रमाण सुस्पष्ट है, भगवान् स्वीय शक्ति के द्वारा सृष्टि कार्य करते हैं। यह संवाद श्वेताश्वतर में मिलता है, 'जो अद्वितीय परमेश्वर, ब्राह्मणादि जाति शून्य होकर भी स्वीय विविध शक्ति के द्वारा अनेक विध ब्राह्मणादि वर्ण को उत्पन्न करते हैं, श्रीविष्णु पुराण में उकत है, जिस प्रकार अग्नि एकत्र अवस्थित होकर भी स्वीय विस्तारिणी

ईशावास्योपनिषदि–

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्थाविरं शुद्धमपापविद्धं ।।
कवि र्मनीषी परिभूः स्वयम्भू र्याथातथ्यतोऽर्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।।इति ।।१।। (ईशावास्य ८)

श्रीविष्णुपुराणे च–

तदेतदक्षयं नित्यं जगन्मुनिवराखिलं ।
आविर्भावतिरोभावजन्मनाशविकल्पवत् ।।इति ।।२ ।।१ ।२२ ।५८ ।

अकायोऽस्थाविर इतिसूक्ष्मस्थूलदेहशून्य, अव्रणः अक्षतः विनाशशून्यः, शुद्धः रागाद्यनाविलः; अपापविद्धः कर्म्मशून्यः कवि सर्वज्ञः, मनीषी चतुरः, परिभूः मायाभिभवी, स्वयम्भुः निर्हेतुकः याथातथ्यतः सत्यतया, 'ऋतं सत्यं समीचीनं सम्यक्तथ्य यथातथं' इतिहलायुधः। अर्थान् महदादीन्, समाः सम्वत्सरान् व्याप्य, 'सम्वत्सरो वत्सरोऽब्दो हायनोऽस्त्रीशरत्समाइत्यमरः ।।१।।

तदेतदिति । एतदीश्वरजीवप्रकृतिरूपं अखिलं जगत्

किरणशक्ति द्वारा अनेक देश व्यापक होते हैं, उस प्रकार परंब्रह्म भगवान् हरिः स्वीय शक्ति के द्वारा अखिल जगत् व्याप्त होते हैं, अर्थात् परिदृश्यमान जगत् उनकी शक्ति का ही कार्य है, वस्तु का अंश जीव, वस्तु की शक्ति माया, वस्तु का कार्य जगत् है, अतः विश्व सत्य है। पूर्व में कहा गया है–'सर्वज्ञ भगवान् विष्णु ने स्वीय शक्ति द्वारा जगत् का निर्म्माण किया है, इस वाक्य में भगवान् सर्वज्ञ एवं जगत् यथार्थ है, इसका प्रमाण भी ईशावास्योपनिषद् में है। जो दीप्तिमान् स्थूल, सूक्ष्म, शरीर विवर्जित हैं, अक्षत एवं रागादि रहित होकर शुद्ध स्वभाव, अपापविद्ध अर्थात् कर्मशून्य है एवं सर्वज्ञ मनीषी मायाभिभवकर्त्ता, स्वयम्भु परमात्मा सर्वव्यापक महदादि तत्त्वों का निर्म्माण किये हैं।।१।।

महाभारते च–

ब्रह्म सत्यं तपः सत्यं सत्यं चैव प्रजापतिः।

सत्याद्भूतानि जातानि सत्यं भूतमयं जगत्।।इति।।३।।

अश्वमेधपर्व्व ३५।२४।

आत्मा वा इदमित्यादौ वनलीनविहङ्गवत्।

हे मुनिवर ! अक्षयं नित्यं प्रकृतिजीवरूपमक्षयंस्वरूपेण क्षयरहितं परिणामीत्यर्थः। प्रकृते र्महदादितया जीवस्य च ज्ञानविकाशेन परिणामः। ईश्वररूपन्तुनित्यं कूटस्थं, एतदेवाह आविर्भावेति। ईश्वरांश आविर्भावतिरोभाववान् प्रकृतिजीवरूपोऽंशस्तु जन्मनाशवानिति वा पाठक्रममनादृत्य अर्थक्रमाद्व्याख्यातं। पूर्व्वत्र हि, 'द्वेरूपे ब्रह्मणस्तस्य मूर्त्तञ्चामूर्त्तमेवच। क्षराक्षरस्वरूपे ते सर्व्वभूतेष्ववस्थिते।। अक्षरंतत्परंब्रह्म क्षरंसर्व्वमिदंजगत्।। इत्युक्त्वा, तन्मध्ये ब्रह्मविष्ण्वीश रूपाणि पठित्वा, तदनन्तरं तदेतदिति पठितं।।२।।

ब्रह्मेति। सच्चिदानन्दं सत्यसंकल्पं यद्ब्रह्म तत् सत्यं, आलोचनात्मकं यत् तस्य तपःतत्सत्यं, तेन ब्रह्मणा, सनाभिकमलादुत् पादितो यः प्रजापतिस्तत्

विष्णु पुराण में उक्त है–हे मुनिवर ! यह जगत् नित्य है, कभी भी इसका क्षय नहीं होता है। जगत् का जन्म एवं नाश होना आविर्भाव एवं तिरोभाव है, परमेश्वर से जगत् का आविर्भाव एवं उनमें इसका तिरोभाव होता है, इसको ही जन्म एवं नाश शब्द से कहते हैं।।२।।

महाभारत में उक्त है–सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म सत्य है, आलोचनारूप उनकी तपस्या भी सत्य है एवं उनके नाभि कमल से उद्भूत प्रजापति भी सत्य हैं, उनसे उत्पन्न भूतसमूह भी सत्य हैं, अतएव भूतमय यह जगत् सत्य है।।३।।

विश्व का सत्यत्व प्रतिपादन करने के पश्चात् समागत सन्देह का निरसन करते हैं। 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्' प्रथमतः

सत्यं विश्वस्य मन्तव्यमित्युक्तं वेदवेदिभिः।।४।।

।। इति प्रमेयरत्नावल्यां तृतीयं प्रमेयम्।।४।।

सत्यं, सत्यात् तस्माज्जातानि भूतानि, अतो भूतमयं जगत् सत्यं।।३।।

ननु 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् इत्यादि श्रुतिषु पूर्व्वं परमात्मैक आसीत् नतु प्रपञ्चोऽपि। 'आत्मैवेदमिति सामानाधिकरण्यव्यपदेशस्तु रज्जुभुजङ्गवत् आत्मनि तस्याध्यस्तत्वा देव ततो मिथ्यैव स इति चेत् तत्राह आत्मेति। वने लीनो विहङ्गो हि यथा तत्रास्त्येव, तथा आत्मनि लीनः प्रपञ्चः सौक्ष्म्येण अस्त्येव। अन्यथा सत्कार्य्यतापत्तिः।।४।।

।। इति प्रमेयरत्नावल्यां विश्वसत्यत्व प्रकरणं व्याख्यातं।।३।।

एकमात्र आत्मा अवस्थित था, इत्यादि श्रुति में केवल मात्र आत्मा की स्थिति एवं प्रपंच की अस्थिति प्रतीत होती है एवं अभेद व्यपदेश, रज्जुसर्पवत् आत्मा में अध्यास हेतु होता है अर्थात् रज्जु में सर्प प्रतीत जिस प्रकार मिथ्या है, उस प्रकार आत्मा में भी यह जगत् अध्यस्त मात्र है, अतएव यह प्रपंच मिथ्या है, इस सन्देह का निरसन करते हुए कहते हैं, 'प्रथमतः आत्मा ही एकमात्र था इत्यादि स्थल में वनलीन विहंगवत्' अर्थ करने से कुछ भी असंगति नहीं होती है अर्थात् विहंगमगण जिस प्रकार वन में अवस्थित होते हैं उस प्रकार आत्मा में यह जगत् सूक्ष्मरूप में अवस्थित है, अतएव 'प्रथमतः आत्मा ही एकमात्र था, इत्यादि श्रुति का कुछ भी असामंजस्य नहीं रहा पूर्वोक्त भी सुस्थिर रहा, वेदविद्गणों का भी यही मत है।।४।।

।। इति प्रमेयरत्नावली में विश्वसत्यत्व प्रकरणनामक तृतीय प्रमेय।।३।।

चतुर्थप्रमेयम्

।। अथ विष्णुतो जीवानां भेदः ।।

तथाहि श्वेताश्वतराः पठन्ति–

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषष्वजाते
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ।।४।६।।
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो ऽनीशया शोचतिमुह्यमानः।
जुष्टं यदापश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमेति वीतशोकः ।।

।।इति।।१।।४।७।

ईश्वरात् जीवानां भेदं वक्तुमाह द्वेति। सुपां सुप लुगित्यादि सूत्रादौ विभक्तेरात्। द्वौ सुपर्णौ पक्षिणौ जीवेशलक्षणौ समानमेकं वृक्षं देहं परिषष्वजाते स्वीकृत्य तिष्ठतः। जीवो भोगाय, ईशो नियमनाय इति बोध्यं। तौ कीदृशावित्याह, सयुजौ सहयोगवन्तौ, सखायौ तत्तुल्यौ। तयो रन्य एको जीवः पिप्पलं कर्म्मफलं सुखदुःखरूपं स्वादु अत्ति। अन्य ईश स्तदनश्नन्नपि अभिचाकशीति प्रदीप्यते। समाने एकस्मिन् देहलक्षणे वृक्षे पुरुषो निमग्नो निरतः अनीशया मायया मुह्यमानः सन् शोचति। यदा स्वस्मादन्यं भिन्नं ईशं कल्याणगुणगणेन स्वेन च जुष्टं परिषेवितं पश्यति ध्यायति तदा वीतशोकः सन् अस्य महिमानं ध्यायति।।१।।

अनन्तर ईश्वर से जीव भिन्न हैं, इसका प्रतिपादन करते हैं भेद प्रतिपादन प्रसंग में श्वेताश्वतर उपनिषद् कहती है, जीव ईश्वररूप पक्षीद्वय–तुल्यभाव से देहरूप एक वृक्ष का आश्रय कर परस्पर सहायक एवं सौहार्द्र से रहते हैं, जीवरूप पक्षी अनेक प्रकार सुख–दुःखस्वरूप कर्मफल भोग करता है, अपर ईश्वररूप पक्षी फलभुक् न होकर प्रदीप्तभाव से अवस्थान करता है। देहरूप एक वृक्ष में निमग्न होकर मायामुग्ध जीव अशेष शोकभाजन होता है, जब वह अपने से भिन्न रूप में ईश्वर को देखता है अर्थात् भगवान् सेव्य हैं और मैं उनका

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्व्वता फलं।
अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्य्यनिर्णये।।
इति तात्पर्य्यलिङ्गानि षड्यान्याहुर्मनीषिणः।
भेदे तानि प्रतीयन्ते तेनासौ तस्य गोचरः।।२।।

भेदे शास्त्रतात्पर्य्यं दर्शयितुं आह उपक्रमेति। बृहत्संहितायां उपक्रमोपसंहारयो रैकरूप्यं इत्येकलिङ्गं। द्वा सुपर्णा इत्युपक्रमः। अन्यमीशमित्युपसंहारः। द्वेति, तयोरन्य इति, अनश्नन् इति, अविशेष पुनः पुनः श्रुतिरभ्यासः। अणुत्वबृहत्त्वादिविरुद्ध्वनित्यधर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगिकतया भेदस्य शास्त्रं विना लोकाद् प्रतीतेरपूर्व्वता। वीतशोकइतिफलं। तस्य महिमानमेति इत्यर्थवादः। अनश्नन्निति उपपत्तिः असौ भेदः तस्य शास्त्रतात्पर्य्यस्य गोचरो विषयः।।२।।

सेवक हूँ, इस प्रकार भाव से देखता है, तब उनकी महिमा को जानकर अर्थात् उनके धाम को जानकर वीतशोक होता है। जीव एवं ईश्वर परस्पर भिन्न हैं, यह श्रुत्यादि शास्त्र का तात्पर्य है, शास्त्र तात्पर्य अवगत होने की प्रक्रिया को दिखाते हैं। उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद एवं उपपत्ति ये छः शास्त्रार्थ अवधारण के हेतु हैं, उपक्रम एवं उपसंहार को एक लिंग मानते हैं। उपक्रम–विषय प्रारम्भ का वर्णन, उपसंहार प्रारम्भ में प्रतिपादित विषय का ही अन्तिम में वर्णन करना, अभ्यास–बारम्बार उक्त प्रतिपादित विषय को मध्य–मध्य में कहना, अपूर्वता–प्रकरण प्रतिपाद्य विषय का विषय केवल उसी शास्त्र से प्रतिपादित होता है, दूसरे से नहीं, उसको कहना। फल–परिणाम प्राप्ति, अर्थवाद–प्रशंसादि वचन, उपपत्ति–पदार्थ प्रतिपादन हेतु युक्ति समूह के प्रदर्शन को मनीषिगण शास्त्र तात्पर्य अवगत होने का कारण कहते हैं, ये लिंग समूह जीव ईश्वर भेद प्रतिपादन हेतु शास्त्र तात्पर्य ज्ञान के कारण बनते हैं, अतः शास्त्र का तात्पर्य जीव–ईश्वर भेद प्रतिपादन में है–इसमें सन्देह नहीं है।।२।।

किञ्च मुण्डके–

**यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिं।
तदा विद्वान् पुण्य – पापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति।।इति।।३।१।३।**

काठके च–

**यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति।
एवं मुने र्विजानत आत्मा भवति गौतम।।इति।।४।१।१४।**

ननु नेतानि लिङ्गानि भेदं साधयितुमेकान्तानि, तेषामभेदसाधनेऽपि दर्शितत्वात्। 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति इति मोक्षदशायाम–भेदावधारणाद् व्यवहारिकोभेदः स्यादिति चेत् तत्राह, किञ्चेति यदेति। पश्यः ध्याता जीवः।। यथोदकमिति। विजानतस्तदनुभविनः।। इदमिति। उपाश्रित्य प्राप्य। एष्विति। एषु वाक्येषु साम्यमिति, तादृगेवेति, साधर्म्यमिति, मोक्षेऽपि भेदोक्ते

ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति प्रभृति श्रुति के द्वारा अभेद प्रतिपादन होता है, अतः सिद्धान्त स्थापन हेतु पूर्वपक्ष का विवेचन करते हैं, मुण्डकोपनिषद् में उक्त है–'पश्य' अर्थात् ध्याता जीव, जब रुक्मवर्ण ज्योतिःस्वरूप जगत्कर्त्ता ब्रह्मयोनि परमपुरुष का दर्शन करता है, तब तत्त्ववित् साधक बन्धन के मूलीभूत पाप–पुण्य कर्म को मूलतः परिहार पूर्वक निरंजन अर्थात् निर्लेप होकर परम साम्य को प्राप्त करता है। कठोपनिषद् में उक्त है–जिस प्रकार शुद्ध जल निर्मल जल में प्रक्षिप्त होने पर एकरस हो जाता है, हे गौतम ! आत्मवित् मुनि का आत्मा भी उस प्रकार होता है अर्थात् जीव आत्मतत्त्व अवगत होने से आत्मस्वरूप में अवस्थित होता है, देहादि अनात्मवस्तु में उसकी आसक्ति नहीं रहती है, सुतरां जन्म–मरणरूप संसार से निवृत्त होकर विशुद्ध आत्मस्वरूप में विराजित होता है।।

श्रीगीतासु च–

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च।।इति।।१४।२।
एषु मोक्षेऽपि भेदोक्तेः स्याद्भेदः पारमार्थिकः।।३।।
ब्रह्माहमेको जीवोऽस्मि नान्ये जीवा न चेश्वरः।
मदविद्या कल्पितास्ते स्युरितीत्थञ्च दूषितं।।
अन्यथा नित्य इत्यादि श्रुत्यर्थो नोपपद्यते।

स्तात्त्विकोभेदः । एवञ्च ब्रह्मेवेत्यत्र ब्रह्मतुल्य इत्येवार्थः। 'एवौपम्येऽवधारणे' इतिविश्वः।।३।।

'स एव माया परिमोहितात्मा शरीर मास्थाय करोति सर्व्वं' इत्यादि

श्रीमद्भगवद्गीता में उक्त है–इस ज्ञान को आश्रय कर अर्थात् धारण कर जो व्यक्ति मेरे समान धर्म को प्राप्त करता है, वह पुनर्वार सृष्टि एवं प्रलय में जन्म–मृत्यु को प्राप्त नहीं करता है। पूर्वोक्त श्रुति समूह के द्वारा जिस भेद का नित्यत्व प्रतिपादित हुआ है, उसका स्पष्टीकरण कर रहे हैं, मोक्षावस्था में भी जीव–ईश्वर का भेद कथन से वह भेद निःसंदिग्ध पारमार्थिक है अर्थात् मुण्डकोपनिषद् के 'परमं साम्यं मुपैति' कठोपनिषद् के 'तादृगेव भवति' श्रीमद्भगवद्गीता के 'ममसाधर्म्यमागताः' इत्यादि वचनों में साम्यं–समता, तादृक्–तादृश साधर्म्य–समानधर्मता इत्यादि उपमावाचक शब्द के द्वारा उपमानार्थ की उपस्थिति होती है, उससे ही भेद प्रतिपन्न होता है, कारण जिसके साथ उपमा दी जाती है उसे उपमान कहते हैं एवं जिसकी उपमा है उसे उपमेय कहते हैं, जैसे 'चन्द्रसदृश मुख' कहने से चन्द्र उपमान एवं मुख उपमेय है, इत्यादि स्थल में जिस प्रकार चन्द्र से मुख की भिन्नता का बोध होता है, उस प्रकार ईश्वर से जीव का भेद भी विलक्षण रूप से प्रतीत होता है, इसमें सन्देह का अवकाश नहीं है।।३।।

सम्प्रति 'स एव माया परिमोहितात्मा शरीरमास्थाय करोति सर्वं'

तथाहि कठाः पठन्ति—

नित्यो नित्यानां चेतन श्चेतनानामेको बहूनां
यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः
शाश्वती नेतरेषां।।इति।।४।।२।२।१३।

श्रुत्यर्थाभासमादाय शङ्करानुयायिनः केचित् कल्पयन्ति। ब्रह्मैवाविद्यया मोहितं, एको जीवो वास्तवः, स च अहमेव, मदन्ये जीवा मदविद्यया कल्पिताः। सर्व्वेश्वराख्यः पुरुषश्च चिदाभासाः सर्व्वे स्वाप्निका इव रथाश्वादयः। अथ ज्ञातात्मनि मयि चिन्मात्रतया अवस्थिते ते न भविष्यन्ति स्वाप्निका इव रथादयः। जागरे इत्येक एव सत्यो जीव इति तदिदं प्रत्याचष्टे ब्रह्माहमिति। इत्थं मोक्षेऽपि भेद प्रतिपादनेन। अन्यथा पारमार्थिक भेदानङ्गीकारे। तां श्रुतिमुदाहरति। नित्य इति। आत्मनि मनसि स्थितम्।।४।।

ब्रह्म ही माया परिमोहित होकर शरीर ग्रहण करके सब कुछ करता रहता है, इत्यादि श्रुति से अर्थाभास ग्रहण कर शंकरमतानुयायीगण कल्पना करते हैं कि अविद्या परिमोहित ब्रह्म ही एकमात्र वास्तव जीव है, वह जीव मैं ही हूँ। हमसे अपर जीवगण मेरी अविद्या परिकल्पित हैं एवं ईश्वराख्य पुरुष भी मेरी अविद्या कल्पित हैं। स्वप्नदृष्ट रथ अश्वादि के सदृश सब कुछ है। जब मैं ज्ञातात्मतत्त्व हो जाऊँगा तब कुछ भी नहीं रहेगा, जिस प्रकार स्वप्नदृष्ट रथ अश्वादि जाग्रदवस्था में नहीं रहते हैं, इस मतवाद का निरास करने के लिए कहते हैं, ब्रह्म ही एकमात्र जीव हैं और मैं ही उक्त जीव हूँ, अन्य जीव नहीं है, ईश्वर भी नहीं है, वे सब ही मेरी अविद्या परिकल्पित हैं, इत्यादि मत दुष्ट हैं, अन्यथा 'नित्यो नित्यानां' इत्यादि श्रुति का अर्थ असंगत हो जायगा। कठोपनिषद् में कथित है—जो नित्य चैतन्यस्वरूप परमेश्वर—चैतन्यस्वरूप नित्य भूत अनेक जीवों के साधनानुरूप वांछितार्थ

एकस्मादीश्वरान्नित्याच्चेतनात्तादृशा मिथः।
भिद्यन्ते बहवो जीवा स्तेन भेदः सनातनः।।५।।
प्राणैकाधीनवृत्तित्वाद् वागादेः प्राणता यथा।
तथा ब्रह्माधीनवृत्ते र्जगतो ब्रह्मतोच्यते।।

श्रुत्यर्थं योजयति एकस्मादिति। यः परेशो नित्य श्चेतन एकोनित्यानां चेतनानां बहूनां जीवानां कामान् वाञ्छितानि, यथा साधनं विदधाति। तं ये धीराः पश्यन्ति ध्यायन्ति, तेषां शान्तिः संसार दुःखनिवृत्तिः शाश्वतीति तदर्थः। न खलु नित्यानां चेतनानां अविद्याकल्पितत्वं प्रेक्षावता शक्यमभिधातुं, इत्येकजीववादकण्ठकुठाररूपमेतद्वाक्यं। तादृशाइति, नित्याश्चेतनाश्चेत्यर्थः। तेनेति, नित्यानां चेतनानां नित्यात् चेतनात् भेदप्रतिपादनेन इत्यर्थः।।५।।

नन्वेवं 'सर्व्वं खल्विदं ब्रह्म, तत्त्वमसि, इत्यादेः कागति रितिचेत् तत्राह प्राणैकेति। नवै इति, वागादीनामिन्द्रियाणां वागादि शब्दैर्नाभिधानं

विधान करते हैं, जो सब धीर व्यक्तिगण आत्मस्थरूप में उनका दर्शन करते हैं, ये सब शाश्वत सुख के अधिकारी होते हैं, अपर नहीं।।४।।

अनन्तर उक्त श्रुति का तात्पर्य कथन पूर्वक भेद का नित्यत्व साधन करते हैं, जब चैतन्यस्वरूप एक ईश्वर से तादृश चैतन्यस्वरूप अनेक जीवगण परस्पर भिन्न होते हैं, तब जीव एवं ईश्वर का भेद अवश्य ही नित्य है।।५।।

इस प्रकार जीव–ईश्वर भेद की नित्यता प्रदर्शन पूर्वक 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' अर्थात् दृश्यमान् यह जगत् समस्त ही ब्रह्म है, इत्यादि श्रुत्यर्थ का समाधान करते हैं, जिस प्रकार वाक् आदि इन्द्रियगण–प्राण के अधीन होने से प्राण शब्द से अभिहित होती है, उस प्रकार यह जगत् ब्रह्माधीन वृत्तिता के कारण ब्रह्म शब्द से कथित होता है।

छान्दोग्य उपनिषद् में कथित है, वाक्, चक्षु, श्रोत्र, मन, इत्यादि करण समूह तत्–तत् नाम से ख्यात नहीं होते हैं, प्राण नाम से ही

तथाहि छान्दोग्ये पठ्यते—

न वै वाचो न चक्षूंषि न श्रोत्राणि न मनांसीत्याचक्षते, प्राण इत्याचक्षते, प्राणो ह्येवैतानि सर्व्वाणि भवति।।इति।।

।।६।।५।१।१५।

ब्रह्मव्याप्यत्वतः केश्चिज्जगद्ब्रह्मेति मन्यते।।

यदुक्तं श्रीविष्णुपुराणे—

योऽयं तवागतो देव समीपं देवतागणः
सत्यमेव जगत् स्रष्टाः यतः सर्व्वगतो भवान्।।इति।।

।७।।१।६।६६।

प्रतिबिम्बपरिच्छेदपक्षौ यौ स्वीकृतौ परैः।
विभुत्वाविषयत्वाभ्यां तौ विद्वद्भि र्निराकृतौ।।८।।

किन्तु प्राणायत्तवृत्तिकत्वात् प्राणशब्देनैवाभिधानं, प्राणरूपत्वञ्च यथाभवति, एवं ब्रह्मायत्तवृत्तिकत्वात् चिज्जड़ात्मकस्य प्रपञ्चस्य ब्रह्मशब्देनाभिधानं ब्रह्मरूपत्वञ्च इति।।६।।

यद्धि यद्व्याप्यं तत् तद्रूपमिति सङ्केतान्तरेणापि तदद्वैतवाक्यं सङ्गमनीय मित्याह ब्रह्मेति। योऽयमिति श्रीविष्णुं प्रति देवानां वाक्यं। स्फुटार्थं। इत्थं च स एव मायेत्यादौ जीवस्य परमात्माभेदः तदायत्त वृत्तिकत्वादिभ्यां व्याख्यातो बोध्यः।।७।।

कथित होते हैं, कारण—वाक् आदि का करणरूप प्राण ही है अर्थात् प्राणाधीन वृत्तिता हेतु वाक् चक्षुः श्रोत्र मनः पृथक्—पृथक् शब्द से कथित न होकर प्राण शब्द से ही कथित होते हैं, उस प्रकार चित् जड़ात्मक ब्रह्म के अधीन जगत् की वृत्तिता हेतु वह जगत् ब्रह्मशब्द से अभिहित होता है।।६।।

कोई—कोई कहते हैं कि जगत् ब्रह्म द्वारा व्याप्त होने से जगत् भी ब्रह्म ही है, विष्णुपुराण के प्रमाण द्वारा कहते हैं, 'हे देव ! आप जगत् स्रष्टा एवं सर्वत्र व्यापक हैं, अतएव जो समस्त देवतागण आपके निकट आये हैं, ये सब सत्य है, क्योंकि आप अन्तर्य्यामी रूप में सभी में स्थित हैं।।७।।

अद्वैतं ब्रह्मणो भिन्नमभिन्नं वा त्वयोच्यते।।
आद्ये द्वेतापत्ति रन्ते सिद्धसाधनता श्रुतेः।।६।।

उपाधौ प्रतिबिम्बितं तेन परिच्छिन्नं वा ब्रह्म जीवरूपंस्यात्। उपाधेर्विगमे तु ब्रह्मैवैकमित्याहुः केवलाद्वैतिनः। तन्निराकर्त्तुमाह प्रतिबिम्बेति। ब्रह्मणो विभुत्वात् नैरूप्याच्च न तस्य प्रतिबिम्बं। परिच्छेदविषयत्वास्वीकाराच्च न तस्य परिच्छेदः। वास्तवे परिच्छेदे टङ्कच्छिन्नपाषाणखण्डव– द्विकारित्वाद्यापत्तिः।।८।।

क्षोदाक्षमत्वादप्यद्वैतं नाभ्युपेयमित्याह अद्वैत मिति। जीव ब्रह्मणोरद्वैतं ब्रह्मणो भिन्नं न वा, नाद्यः, द्वैतापत्तेः। नान्त्यः, प्रतिपादयन्त्या श्रुतेः सिद्धसाधनता पातात्। अद्वैतं हि ब्रह्मात्मकं अतः सिद्धं तदस्ति किं तत् प्रतिपादनेन।।६।।

अनन्तर प्रतिबिम्ब परिच्छेदवाद का खण्डन करते हैं जो लोक प्रतिबिम्ब परिच्छेद पक्ष को मानते हैं, उस पक्ष का खण्डन स्वतः ही होता है, कारण ब्रह्म विभु तथा व्यापक हैं, केवलाद्वैतिगण कहते हैं, उपाधि में प्रतिबिम्बित अथवा उपाधि द्वारा परिच्छिन्न ब्रह्म ही जीव है, उपाधि का अपगम होने से शुद्ध ब्रह्म ही अवस्थित होते हैं, यह सिद्धान्त सर्वथा निरर्थक है, कारण ब्रह्म विभु व्यापक पदार्थ है एवं अविषय है अर्थात् किसी के द्वारा ग्राह्य नहीं है, अतः उपाधि में प्रतिबिम्बित होना अथवा उपाधि द्वारा परिच्छिन्न होना सम्भव नहीं है, जिसका परिच्छेद है–उसका प्रतिबिम्ब हो सकता है, जो परिच्छिन्न है–वह अपर का विषय हो सकता है, सर्वव्यापक–अविषय ब्रह्म पदार्थ कभी भी प्रतिबिम्बित अथवा परिच्छिन्न नहीं हो सकता है, यदि वह परिच्छेद वास्तव हो तो महा अनर्थ होगा, टंकच्छिन्न पाषाण खण्ड के समान विकारित्व रूप महा अनर्थ उपस्थित होगा, अतएव प्रतिबिम्ब परिच्छेदवाद पक्ष सुतरां दूषित है।।८।।

पुनर्वार अद्वैतवाद का खण्डन करते हैं, जीव ब्रह्म का अद्वैत, ब्रह्म से भिन्न है अथवा अभिन्न है ? यदि भिन्न है तो अद्वैत भंग होगा,

अलीकं निर्गुणं ब्रह्म प्रमाणाविषयत्वतः।
श्रद्धेयं विदुषां नैवेत्यूचिरे तत्त्ववादिनः।।१०।।

।। इति प्रमेयरत्नावल्यां भेदसत्यत्वप्रकरणं चतुर्थं प्रमेयम्।।

ननु 'साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च' इति श्रुतेः निर्गुणमेव ब्रह्म वास्तवं तत्राह अलीकमिति। न तावत् निर्गुणे ब्रह्मणि प्रत्यक्षं प्रमाणं रूपाद्यभावात्। नाप्यनुमानं तद्व्याप्य लिङ्गाभावात्। न च शब्दः प्रवृत्तिनिमित्तानां जात्यादीनां तस्मिन्नभावात्। न च तत्र भागलक्षणया भाव्यं, सर्व्वशब्दावाच्ये तदसम्भवादिति पूर्व्वमेवोक्तं।।१०।।

।। इति प्रमेयरत्नावल्यां भेदसत्यत्वप्रकरणं व्याख्यातं।।

द्वैतापत्ति यदि अभिन्न होता तो सिद्ध साधनता दोष होगा अर्थात् अद्वैत यदि ब्रह्मात्मक ही है तब तो वह श्रुतिसिद्ध ही है, उसका प्रतिपादन करना अनावश्यक है।।९।।

पुनश्च 'साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च' अर्थात् केवलमात्र चैतन्यस्वरूप साक्षी परमात्मा निर्गुण है, इत्यादि श्रुति से प्रतिपादित निर्गुण ब्रह्म ही वास्तव है, इस प्रकार असंगत सिद्धान्तकारियों का कल्पितवाद निराश करने के लिए कहते हैं, तत्त्ववित् पण्डितगण कहते हैं—प्रमाण की अविषयता के कारण 'ब्रह्म निर्गुण' यह अलीक है; अतएव वह वाद विद्वद्गणों का अश्रद्धेय है, रूपादि का अभाववशतः निर्गुण ब्रह्म में प्रत्यक्ष योग्यता नहीं है, तथापि लिंग का अभाव हेतु अनुमान भी नहीं हो सकता है। शब्द प्रवृत्ति के हेतुभूत जाति गुण क्रिया संज्ञा के अभाव हेतु शब्द की प्रवृत्ति नहीं हो सकती है, सुतरां उससे भागत्याग लक्षणा भी सम्भव नहीं है, कारण शब्द मात्र अवाच्य ब्रह्म में लक्षणाशक्ति की गति नहीं हो सकती है, अतएव ब्रह्म निर्गुण है यह कथन निःसंदिग्ध असंगत है।।१०।।

।। इति जीव ब्रह्म का भेद सत्यत्व प्रकरण नामक चतुर्थ प्रमेय।।४।।

पंचमप्रमेयम्

॥ अथ जीवानां भगवद्दासत्त्वं ॥

तथाहि श्वेताश्वतराः पठन्ति–

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं दैवतानां परमञ्च दैवतं।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यं। ।इति॥

॥१॥६।७।

स्मृतिश्च–

ब्रह्मा शम्भु स्तथैवार्क श्चन्द्रमाश्च शतक्रतुः।
एवमाद्या स्तथैवान्ये युक्ता वैष्णवतेजसा। ।इत्याद्या॥
सब्रह्मकाः सरुद्राश्च सेन्द्रा देवा महर्षिभिः।
अर्च्चयन्ति सुरश्रेष्ठं देवं नारायणं हरिं। ।इत्याद्या च॥

जीवानां हरिदासत्वं प्रतिपादयितुमाह अथेति। ननु हरिदासत्वे स्वरूपसिद्धे किमर्थं उपदेशः इति चेत् तदभिव्यक्त्वर्थः स उपदेश इति गृहाण। एवमाह श्रुतिः। 'घृतमिव पयसि गूढं भूते भूते वसति विज्ञानं। सततं मन्थयितव्यं मनसा मन्थानदण्डेन'। ।इति॥ तमिति ईश्वराणां चतुर्मुखादीनां, देवतानां इन्द्रादीनां॥१॥

ब्रह्मादीनामैश्वर्य्यं परमात्मदत्तमित्याह ब्रह्मेति। दासभूत

॥ अथ जीवानां भगवद्दासत्वप्रकरणम्॥

अनन्तर जीव का भगवद् दासत्व प्रतिपादन करते हैं। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कथित है, ब्रह्मादि ईश्वरगण के परम ईश्वर इन्द्र आदि देवतावृन्द के परम देवता, दक्षादि प्रजापतिगण के परम पति एवं परम से भी परतम, जगत् के एकमात्र ईश्वर, अतएव पूज्य देव को हम परतत्त्वरूप में जानते हैं॥१॥

उक्त विषयों में स्मृति प्रमाण प्रदर्शन करते हैं–यथा; कमलासन, महादेव, चन्द्र, सूर्य्य एवं इन्द्रादि देवता सब ही विष्णु के तेज से प्रकाशित होते हैं। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र एवं महर्षिगण के सहित अन्यान्य देवतागण उन सुरश्रेष्ठ भगवान् श्रीहरिः की अर्चना करते हैं।

पाद्मे च, जीवलक्षणे—

दासभूतो हरेरेव नान्यस्यैव कदाचन।।इति।।२।।

।। इति प्रमेयरत्नावल्यां भगवद्दासत्वप्रकरणं पंचमंप्रमेयम्।।५।।

षष्ठमप्रमेयम्

।। अथ जीवानां तारतम्यं प्रकरणम्।।

अणुचैतन्यरूपत्वज्ञानित्वाद्यविशेषतः।
साम्ये सत्यपि जीवानां तारतम्यञ्च साधनात्।।१।।

इति नान्यस्य ब्रह्मरुद्रादेः।।२।।

।। इति प्रमेयरत्नावल्यां जीवानां हरिदासत्वप्रकरणं व्याख्यातं।।

जीवानां तारतम्यं वक्तुमाह अथेति। अणु इति। आदिशब्दात् कर्त्तृत्व भोक्तृत्वापहतपाप्मत्वादीनि ग्राह्याणि। साधनादिति; कर्म्मरूपात् भक्तिरूपाच्च इत्यर्थः। कर्म्मतारतम्यादैहिकं, भक्तितारतम्यात्तु पारत्रिकं फलतारतम्यं बोध्यं।।१।।

जीव का लक्षण पद्मपुराण में उक्त है—

जीवगण, श्रीहरिः के ही दास होते हैं, अपर किसी के नहीं।।२।।

।। इति जीव का भगवद् दासत्व निरूपण प्रकरण नामंक पंचमप्रमेयम्।।५।।

।। अथ जीवानां तारतम्य प्रकरणम्।।

समस्त जीव समान होने पर भी सत् शिक्षा ग्रहण के तारतम्य से ही उसमें तरतमता आ जाती है, ईश्वरीय शास्त्र सबको समान शिक्षा ग्रहण कराने के निमित्त सर्वदा प्रयत्नशील हैं, उसका वर्णन करते हैं—जीवगण अणुचैतन्यरूपत्व एवं ज्ञानित्वादि से परस्पर सम होने पर भी साधन विशेष ग्रहण के वैषम्य से तरतम होते हैं अर्थात् काम्यकर्मरूप एवं भक्तिरूप साधन तारतम्य हेतु ऐहिक पारत्रिक

तत्राणुत्वमुक्तं श्वेताश्वतरैः—

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते।।इति।।
चैतन्यरूपत्वं ज्ञानित्वादिकञ्चषट् प्रश्न्यां।
एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः।।इति।।२।।प्रश्न ४।९।

बालाग्रेति। सच जीवो भगवत्प्रपन्नः आनन्त्याय कल्पते, अन्तो मरणं, तद्राहित्याय इत्यर्थः।।

ज्ञानित्वादिकञ्च इत्यत्रादिपदात् कर्त्तृत्वभोक्तृत्वे। एष हीति एष विज्ञानात्मा पुरुषोजीव स्तस्य द्रष्टेत्यादिना रूपादिभोगः प्रस्फुटः। प्रकृतेः कर्त्तृत्वे, 'यजेत् ध्यायेत्' इत्यादि श्रुति वैयर्थ्यं। समाध्यभावश्च। प्रकृतेरन्योऽहमस्मीति समाधिः। नचैष जड़ायास्तस्याः सम्भवेत्, नच स्वस्य स्वान्यत्वं सम्भवति।।२।।

तारतम्य होता है। काम्यकर्म के तारतम्य हेतु ऐहिक फल का तारतम्य है एवं भक्ति के तारतम्य हेतु पारत्रिक फल में तारतम्य होता है। इस प्रकार जीवगण स्वरूपतः समान होने पर भी शिक्षा साधनजनित फल तारतम्य से उन सबके मध्य में परस्पर तारतम्य होता है।।१।।

सम्प्रति अणु चैतन्यरूपत्व का प्रतिपादन करते हैं, यथा श्वेताश्वतर उपनिषद् में उक्त है, बालाग्र के अग्रभाग को पुनर्वार शत भाग से विभक्त किया जाय तो उसके एकमात्र अंश के समान जीव सूक्ष्म है, वह जीव भगवत् शिक्षा से शिक्षित होकर भगवत् प्रपन्न होता है अर्थात् उनके कथन के अनुसार विश्वस्त रूप से चलकर मुक्त होता है। अनन्तर चैतन्यरूपत्व, ज्ञानित्वादि, आदि पद से प्राप्त कर्त्तृत्व भोक्तृत्वादिरूप धर्म को दर्शाते हैं। षट्प्रश्नी में उक्त है—विज्ञानात्मा पुरुष जीव ही द्रष्टा, श्रोता, आघ्राणकर्त्ता रसास्वादनकर्त्ता, मन्ता, बोद्धा एवं कर्त्ता है।।२।।

आदिना गुणेन देहव्यापित्वञ्च श्रीगीतासु–

यथा प्रकाशयत्येकः कृस्नं लोकमिमं रविः।

क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृस्नं प्रकाशयति भारत।।इति।।१३।३३।

आहचैवं सूत्रकारः–

गुणाद्वालोकवदिति।।ब्रह्मसूत्र २।३।३४।

गुणनित्यत्वमुक्तं वाजसनेयिभिः।

अविनाशी वा अरे अयमात्मानुच्छित्तिधर्म्मा।।इति।।३।।४।५।१४ बृ०।।

यथेति विशदार्थ। गुणाद्वेति आलोको दीपादि र्यथा प्रभाख्यगुणात् कृत्स्नं गेहंव्याप्नोति, एवं चेतनाख्यगुणात् कृस्नं देहं जीव इत्यर्थः। अविनाशीति। अरे मैत्रेयि अयमात्मा जीवः स्वरूपतोऽविनाशी। अनुच्छित्ति उच्छेदरहिता धर्म्मा ज्ञानादयो यस्य स अनुच्छित्तिधर्म्मा, गुणतोऽप्यविनाशीत्यर्थः। नचानुच्छित्तिरेव धर्म्मोयस्य इति व्याख्यातव्यं। अस्यार्थस्य अविनाशीत्यनेनैवावगतत्वात्।।३।।

अतः पर पूर्वोक्त आदि पद से प्राप्त गुण द्वारा व्यापित्व को कहते हैं, श्रीमद्भगवद्गीता में उक्त है–'हे अर्जुन ! जिस प्रकार एक सूर्य्य अखिल लोक को प्रकाशित करता है, उस प्रकार क्षेत्रज्ञ जीव भी समस्त देह को प्रकाशित करता है।

ब्रह्मसूत्रकार श्रीवेदव्यासजी ने कहा है–'गुणाद्वा आलोक वदिति' आलोक अर्थात् दीपादि, जिस प्रकार प्रकाश गुण द्वारा गृह को आलोकित कर समस्त गृह में व्याप्त रहता है, उस प्रकार जीव भी चेतनाख्य स्वीय गुण के द्वारा समस्त देह में अवस्थित होता है। अनन्तर प्रमाण प्रदर्शन पूर्वक उक्त गुण का नित्यत्व प्रतिपादन करते हैं, वाजसनेयिगण उक्त गुण समूह को नित्य मानते हैं, यथा–'अरे मैत्रेयि ! यह आत्मा अर्थात् जीव स्वरूपतः ही अविनाशी है एवं उच्छेद शून्य धर्मविशिष्ट है अर्थात् उक्त गुणगण का नाश नहीं है वे सब नित्य होते हैं।।३।।

एवं साम्येपि वैषम्यमैहिकं कर्म्मभिः स्फुटं।
प्राहुः पारत्रिकं तत्तु भक्तिभेदैः सुकोविदः।।

तथाहि कौथुमाः पठन्ति–

यथाक्रतुरस्मिंल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति।।इति।।

स्मृतिश्च–

यादृशी भावना यस्य सिद्धि र्भवति तादृशी।।इति।।

एवं अणुत्वादिभिर्जीवानां साम्यमुक्त्वा, अर्थसाधनहेतुकं वैषम्यमाह एवमिति। ऐहिकं प्रपञ्चगतं, पारत्रिकं भगवल्लोकगतम्। यथेति। अस्मिन् लोके पुरुषो यथाक्रतुः यादृशं साधनं करोति तथा इतः प्रेत्य अस्मात् लोकात् परलोकं गत्वा भवति। साधनानुरूपं फलं भवति इत्यर्थः। यादृशीति गदितार्थं।। उपसंहरति शान्ताद्या इति। शान्तदास्यसख्यवात्सल्यरतयः। पञ्चभावाः। तैर्देवंभजतां वैषम्यं प्रस्फुटं।। ये खलु विष्वक्सेनानुयायिनः 'निरञ्जनः परमंसाम्यमुपैति इतिश्रुतेः, मोक्षे जीवानां परमं साम्यं स्वीचक्रुः, तेषामपि वैषम्यं

पूर्वोक्त प्रमाण निर्णय के द्वारा अणुत्वादिक का प्रदर्शन के अनन्तर अर्थ साधन हेतु शिक्षाग्रहण वैषम्य हेतु जीवों में तारतम्य होता है। जीव में स्वरूपगत अणुत्वादिरूप में परस्पर साम्य होने पर भी काम्यकर्म की शिक्षा द्वारा ऐहिक वैषम्य 'इस जगत् में वैषम्य होता है एवं भक्ति शिक्षा की विविधता के कारण पारत्रिक परलोक में भी वैषम्य सुस्पष्ट रूप से होता है, सुविज्ञ व्यक्तियों का निर्णय ही यह है।

कौथुमशाखिगण कहते हैं–इस लोक में पुरुष यथाक्रतु होकर अर्थात् जिस प्रकार साधन की शिक्षा प्राप्त कर इस लोक से गमन करता है, वह उस प्रकार होता है अर्थात् स्वकीय साधन के अनुरूप ही फल को प्राप्त करता है, इस विषय में स्मृति प्रमाण उठाते हैं जिसकी भावना जैसी हो उसकी सिद्धि भी उस प्रकार ही होती है।

शान्तादि रति पर्यन्त–शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर इन

शान्त्याद्यारतिपर्य्यन्ता ये भावाः पञ्च कीर्त्तिताः।
तै र्देवं स्मरतां पुंसा तारतम्यं मिथो मतं।।४।।

।। इति प्रमेयरत्नावल्यां जीवतारतम्यप्रकरणं षष्ठमप्रमेम्।।

सप्तमप्रमेयम्

।। अथ श्रीकृष्णप्राप्ते मोंक्षत्वं।।

यथा–

ज्ञात्वा देवं सर्व्वपाशापहानिरित्यादि।।श्वेता० १।१०।।
एको वशी सर्व्वगः कृष्ण ईड्य इत्यादि च।।गो० २०।।

दुष्परिहरं जीवान् प्रति श्रीदेव्याः शेषित्वाङ्गीकारात् विष्वक्सेनस्य नियामकत्वस्वीकाराच्च।।४।।

।। इति प्रमेयरत्नावल्यां जीवतारतम्यप्रकरणं व्याख्यातं।।

कृष्णप्राप्ते र्मुक्तित्वं वक्तुमाह ज्ञात्वेत्यादिगदित्यार्थम्।। बहुधेति

पाँच भावों का वर्णन शास्त्र में है, उस–उस भाव के अनुसार जो सब जीवगण श्रीहरिः का स्मरण करते हैं, उससे उसमें तारतम्य होता है अर्थात् उक्त शान्तादि पाँच रस का आस्वादन भिन्न–भिन्न प्रकार होने से उससे व्यक्ति में भिन्नता आ जाती है। सुतरां परस्पर से भिन्नता भी होती है।।४।।

।। इति प्रमेयरत्नावली में जीवतारतम्य प्रकरण नामक षष्ठम प्रमेय।।

अनन्तर श्रीकृष्ण प्राप्ति ही परममोक्ष है, उसको कहते हैं, श्वेताश्वतर उपनिषद् में उक्त है–जिन्होंने सद्गुरु के निकट से परमेश्वर तत्त्व जान लिया है, उसके देह–दैहिक ममता पाश नष्ट हो जाते हैं, ममता पाश नष्ट होने से वह पाशहेतु क्लेश भी मूलतः क्षीण होता है, अतः परजन्म–मृत्यु की हानि होती है अर्थात् पुनः–पुनः जन्म–मृत्युरूप प्रवाह से वह अनायास ही उत्तीर्ण हो जाता है, अनन्तर

बहुधा बहुभिर्व्वेशै र्भाति कृष्णः स्वयं प्रभुः।
तमिष्टवा तत्पदे नित्ये सुखं तिष्ठन्ति मोक्षिणः।।१।।

।। इति प्रमेयरत्नावल्यां श्रीकृष्ण प्राप्ते र्मोक्षत्वप्रकरणं सप्तमप्रमेयम्।।

अष्टमप्रमेयम्

।। अथैकान्तभक्ते र्मोक्षहेतुत्वं।।

यथा श्रीगोपालतापन्यां—

भक्तिरस्य भजनं तदिहामुत्रोपाधिनैरास्येनामुष्मिन् मनः कल्पनमेतदेव नैष्कर्म्म्यम्।।इति।।

श्रीकृष्णोपासकानामिव श्रीरामाद्युपासकानाञ्च मोक्षः। सुखतारतम्यं तु अवर्जनीयम्।।१।।

।। इति प्रमेयरत्नावल्यां भक्ते र्मोचकत्वप्रकरणं व्याख्यातं।।

निष्काम भक्तेर्मुक्तिकरत्वं वक्तुमाह अथेति । भक्तिरस्येति।

उत्तरोत्तर श्रीभगवान् के अभिध्यान के द्वारा लिंग शरीर नष्ट होने से शुद्ध सत्त्वमय अप्राकृत भागवत पद प्राप्त कर वह पूर्णाभिलाष होता है। श्रीगोपालतापनी श्रुति में कथित है—पीठ मध्य स्थित श्रीप्रभु की पूजा जो करता है, वह ही शाश्वत सुख का अधिकारी होता है। सन्देह यह है कि यदि श्रीकृष्ण प्राप्ति ही मोक्ष हो तो श्रीरामादि अवतारों की प्राप्ति से क्या मुक्ति नहीं होगी ? समाधान करते हैं, स्वयं प्रभु श्रीकृष्ण ही अनेक रूपों से विलास करते हैं, अतएव जिस किसी प्रकार से ही उपासना के अनुसार ही मुक्ति होती है और वह साधक नित्यधाम में अवस्थित होता है।।१।।

।। इति प्रमेयरत्नावली में श्रीकृष्णप्राप्तिरूप मोक्ष प्रकरण सप्तम प्रमेय।।

भक्ति ही मोक्ष का कारण है—इसका निरूपण करते हैं— श्रीगोपालतापनी श्रुति में उक्त है—श्रीकृष्ण के आनुकूल्य पूर्वक श्रवणादिरूप

नारदपञ्चरात्रे च–

सर्व्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्म्मलं।
हृषीकेण हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते।।इति।।१।।

नवधा चैषा भवति–

यदुक्तं श्रीभागवते–

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोःस्मरणं पादसेवनं।
अर्च्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनं।।

अस्य श्रीकृष्णस्य आनुकूल्येन श्रवणादिका भक्ति र्भजनं। तथा अमुष्मिन् कृष्णे मनःकल्पनं चित्तानुरञ्जनञ्च। मनः कल्प्यते अनुरञ्जते अर्प्यतेऽनेन इति निरुक्तेः। तादृश श्रवणादिहेतुको भावस्तदित्यर्थः। उत्तमात्वसिद्धये तदिहेति। इहलोके परलोके चोपाधि नैरास्येन कृष्णान्यफलाभिलाष राहित्येन तन्मात्रस्पृहया जायमान मित्यर्थः। एतदेव नैष्कर्म्यं आनुसङ्गेन मोक्षकरमित्यर्थः।। सर्व्वोपाधीति। सर्व्वैरुपाधिभिः कृष्णान्याभिलाषै र्विनिर्मुक्तं, निर्म्मलं कर्म्माद्यनाविलं तत्परत्वेनानुकूल्येन विशिष्टं। हृषीकेण श्रोतादिना हृषीकेशस्य सेवनं कायिकं वाचिकं मानसिकं च परिशीलनं भक्तिरित्यर्थः। अत्र उत्तमात्वं स्फुटम्।।१।।

तद्भेदानाह श्रवणमिति। एषा नवलक्षणा भक्ति रर्पितैव पुसां क्रियते

भक्ति ही भजन है, उक्त भजन, ऐहिक पारत्रिक फल कामनाशून्य भाव से श्रीकृष्ण में मनोनिवेश होने से उत्तमाभक्ति होती है एवं नैष्कर्म्य अर्थात् आनुसंगिक मोक्षकर होता है। समस्त उपाधि परित्याग पूर्वक भगवान् की आराधना ही उत्तमाभक्ति है, यह लक्षण नारदपंचरात्र का है–सर्वतोभाव से उपाधि समूह का परित्याग पूर्वक भक्ति अभिलाष से निर्म्मल चित्त होकर श्रोत्र आदि इन्द्रियवृन्द के द्वारा भगवान् हृषीकेश की जो सेवा है उसको उत्तमाभक्ति कहते हैं।।१।।

उक्त भक्ति नौ प्रकार की है–श्रीमद्भागवत में इसका वर्णन है, श्रीभगवान् के गुणावलियों का श्रवण तथा उनके नाम, रूप, गुणों

इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्ति श्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येधीतमुत्तमम्।।इति।।
सत्सेवा गुरुसेवा च देवभावेन चेद्भवेत्।
तदैषाभगवद्भक्ति र्लभ्यते नान्यथा क्वचिद्।।२।।
देवभावेन सत्सेवा यथा तैत्तिरीयके।।१।११।२।
अतिथिदेवोभव।।इति।।
तथा तद्भक्तिर्यथा श्रीभागवते।।३।५।३२।

नतु कृत्वा अर्पिता। तत्रापि अद्धा साक्षादेव नतु फलान्तरेच्छाव्यवधानेन क्रियते चेदुत्तममधीतमुत्तमाभक्ति रित्यहं मन्ये।। भक्तिलाभस्य हेतुमाह सत् सेवेति।।२।।

देवभावेनेति। अतिथिरनिकेतनो हरिभक्तो देवो हरिवत् पूज्यो यस्य स त्वमीदृशो भव इति शिक्षा। नैषामिति प्रह्लाद वाक्यं एषां वहिर्दृष्टीनां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं न स्पृशति। यस्य मति कृतस्य तदङ्घ्रिस्पर्शस्य अर्थः

का कीर्त्तन, नाम, रूप, गुण, लीलाओं का स्मरण, उनके पाद सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य एवं आत्म–निवेदन ये नौ प्रकार की भक्ति हैं, आत्म समर्पित साधक उक्त नौ प्रकार भक्ति का अनुष्ठान यदि करता है तो उसे उत्तम अध्ययन माना जायगा।।१।।

भक्ति प्रतिपादन के अनन्तर उक्त भक्ति लाभ करने का कारण जो साधु एवं श्रीगुरु सेवा है, उसका वर्णन करते हैं, इष्टदेव की बुद्धि से सत्सेवा एवं श्रीगुरुसेवा का अनुष्ठान होने से ही भगवद्–भक्ति लाभ होता है अन्यथा किसी प्रकार से कभी भी भगवद्–भक्ति नहीं होगी।।२।।

श्रीहरिःबुद्धि से साधु, श्रीगुरुसेवा अनुष्ठित होने से ही भक्तिप्राप्ति होगी, श्रीप्रह्लाद महाशय की वाणी से उसका प्रतिपादन करते हैं। जब तक मानव कृष्णैक सर्वस्व व्यक्तियों की चरणधूलि से स्वयं को अभिषिक्त नहीं करता है, तब तक श्रीहरिः–चरणों में कभी

नैषा मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं स्पृशत्यनर्थापगमोयदर्थः।
महीयसां पादरजोभिषेकं निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत्।।इति।।३।।
देवभावेन गुरुसेवा तथा तैत्तिरीयके।।१।११।२।
आचार्य्यदेवो भव।।इति।।
श्वेताश्वतरोपनिषदि च।।६।२३।

फलं अनर्थापगमः संसृतिविनाशो भवति। तावत् कियदित्यत्राह महीयसामिति। निष्किञ्चनानां कृष्णैकधनानां महीयसां साधूनां अङ्घ्रिरजोऽभिषेकं यावन्न वृणीत परिनिष्टया यावत् तन्नसेवेत इत्यर्थः।।३।।

आचार्य्यो मन्त्रोपदेष्टा सदेवो हरिवत् पूज्यो यस्य स त्वमीदृशो भव इति शिक्षा।। यस्येति। यस्य जिज्ञासो र्यथा देवे परमात्मनि तथा गुरौः पराभक्तिः स्यात् तस्यैते अस्यामुपनिषदि कथिता अर्थाः प्रकाशन्ते स्फुरन्ति नत्वेतद्विपरीतस्य इत्यर्थः।। तस्मादिति। उत्तमं श्रेयो जिज्ञासु र्जनो गुरुं प्रपद्येत।। कीदृशं, शाब्दे ब्रह्मणि वेदे, परे ब्रह्मणि श्रीकृष्णे च निष्णातम्। तत्र

भी किसी प्रकार से भी भक्ति प्राप्ति नहीं होगी, मानव की मति श्रीहरिः के आनुकूल्य करने के लिए आगे नहीं बढ़ेगी, कारण कृष्णैक परायण की चरणधूलि से ही देहात्मबोध नष्ट होता है, देहात्मबोध जब तक रहेगा, ईश्वर भक्ति तब तक नहीं होगी, संसार ही होगा। अतएव कृष्णैक परायण साधु–श्रीगुरु की सेवा निष्कपट परिनिष्ठा से करना भक्ति लाभ के लिए एकान्त कर्त्तव्य है।।३।।

अनन्तर देव भाव से श्रीगुरुसेवा का प्रमाण उपस्थित करते हैं, तैत्तिरीयक श्रुति कहती है–'आचार्य्यो देवोभव मन्त्रोपदेष्टा श्रीगुरु ही श्रीहरिवत् पूज्य हैं, अतः साधक श्रीसद्गुरु की सेवा श्रीहरिः बुद्धि से ही करे। श्वेताश्वतर उपनिषद् में लिखित है–जिसकी परम भक्ति देवता के प्रति है एवं उस प्रकार भक्ति श्रीसद्गुरुदेव के प्रति भी है उसको ही शास्त्र सिद्धान्त समूह कहें। शास्त्रार्थ का प्रकाश उन महात्मा,

यस्य देवे पराभक्ति र्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।इति।।
तया तद्भक्ति र्यथा श्रीभागवते।।११।३।२१—२२।।
तस्माद्गुरुंप्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपसमाश्रयम्।।
तत्र भागवतान् धर्म्मान् शिक्षेद्गुर्व्वात्मदैवतः।
अमाययानुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मात्मदोहरिः।।इति।।४।।
अवाप्तपञ्चसंस्कारो लब्धद्विविधभक्तिकः।
साक्षात् कृत्य हरिं तस्य धाम्नि नित्यं प्रमोदते।।५।।

गुरोरन्तिके स्थितोऽमायया निष्कपटया अनुवृत्त्या सेवया भागवतान् धर्म्मान् शिक्षेत्। स्फुटार्थमन्यत्।।४।।

अन्यान् शक्तिभेदान् प्रपञ्चयितुमाह अवाप्तेति । लब्धा विधिरुचिपूर्व्वतया द्विविधा भक्तिर्येन सः। नन्वेकस्य भक्तिद्वयलाभो विरुद्ध इतिचेत् सत्यं, यस्य यादृशदेशिकसङ्ग स्तस्य तादृश भक्तिलाभः। इति न विरोधः।।५।।

के संसर्ग से ही होगा। सद्गुरुसेवा से भगवद् भक्ति लाभ होता है, उसको प्रमाणित करते हैं—श्रीमद्भागवत में वर्णित है। अतएव जो परम श्रेय जिज्ञासु हो वह श्रीगुरु—चरणों में प्रपन्न हो जाय, वे श्रीगुरु किस प्रकार के होंगे ? वेदरूप शब्दब्रह्म में निष्णात, श्रीकृष्णरूप परंब्रह्म में निष्णात, तदितर विषय में महत्वबुद्धि रहित एवं श्रीकृष्णसेवारत होना तथा श्रीसद्गुरु के लिए एकान्त आवश्यक है। उस प्रकार के श्रीगुरु के समीप में अवस्थान कर निष्कपट भाव से आत्मदैवत मानकर निष्कपट सेवा करके भागवतधर्म की शिक्षा ग्रहण करे, इस भागवतधर्म से ही श्रीहरिः सन्तुष्ट होते हैं।।४।।

पुनश्च अन्य भक्तिभेद को दर्शाने के लिए कहते हैं, जिसने

तत्र पञ्चसंस्कारा यथास्मृतौ–

तापः पुण्ड्रं तथा नाम मन्त्रो यागश्च पञ्चमः।
अमी हि पञ्चसंस्काराः परमैकान्तिहेतवः।।इति।।
तापोऽत्र तप्तचक्रादि मुद्राधारणमुच्यते।
तेनैवहरिनामादिमुद्रा चाप्युपलक्ष्यते।।

सा यथा स्मृतौ–

हरिनामाक्षरै गात्रमङ्कयेच्चन्दनादिना।
स लोकपावनो भूत्वा तस्यलोकमवाप्नुयात्।।इति।।

ताप इति पाद्मोत्तरखण्डे। अमी तापादयः संस्काराः पञ्च। तापादीन् व्याचष्टे। तेनैवेति। तप्त चक्रादिधारणेनैव इत्यर्थः।। तप्तचक्रादिधृतिं कलिमलिन मनसां दुष्करां मन्वानः पतितानुद्दिधीर्षुं भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य श्चन्दनादिना श्रीभगवन्नाममुद्राधृतिं प्राचापि स्वीकृतामुपादिक्षत्।। साच पञ्चसंस्कारवाक्ये तप्त चक्रादिधारणेनोपलक्षितां इति भावः।।

पंचसंस्कार एवं वैधी तथा रागानुगा भक्ति लाभ किया है, वह ही श्रीहरिः का साक्षात्कार प्राप्तकर उनके नित्य धाम में रहकर परमामोद प्राप्त करता है।।५।।

सम्प्रति पंचसंस्कार का प्रतिपादन करते हैं–ताप, पुण्ड्र, नाम, मन्त्र और याग ये पंचसंस्कार हैं, यह सब परमैकान्तिक भक्तिलाभ के हेतु हैं, ताप शब्द से तप्त चक्रादि मुद्रा धारण को जानना होगा, उससे चन्दनादि के द्वारा श्रीहरिनामादि मुद्रा धारण को भी जानना होगा। कारण कलिकाल में अस्वच्छचित्तवृत्ति वाले के लिए तप्त चक्रादि मुद्रा धारण दुष्कर है, अतः चन्दनादि के द्वारा श्रीनामाक्षर मुद्रा धारण का प्रवर्त्तन परम करुण श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी ने किया है। इस विषय में स्मृति प्रमाण उठाते हैं–जो चन्दनादि के द्वारा स्वीय अंग में श्रीहरिनामाक्षर मुद्रा धारण करते हैं वह समस्त लोक पावन होकर भगवल्लोक प्राप्त होते हैं। पुण्ड्र शब्द से ऊर्ध्वपुण्ड्र

पुण्ड्रंस्यादूर्द्ध पुण्ड्रं त–च्छास्त्रे बहुविधं स्मृतम्।
हरिमन्दिरतत् पादाकृत्याद्यति शुभावहम्।।
नामात्रगदितं सद्भि र्हरिभृत्यत्वबोधकं।
मन्त्रोऽष्टादशवर्णादिः स्वेष्टदेववपुर्मतः।।
शालग्रामादिपूजा तु यागशब्देन कथ्यते।
प्रमाणान्येषु दृश्यानि पुराणादिषु साधुभिः।।६।।
नवधाभक्तिर्विधिरुचिपूर्व्वा द्वेधा भवेद् यया कृष्णः।
भूत्वा स्वयं प्रसन्नो ददाति तत्तदीप्सितं धाम।।७।।
विधिनाभ्यर्च्च्यते देव – श्चतुर्वाह्वादिरूपधृत।

पुण्ड्रमिति हरिमन्दिरादितिलकं। 'तिलकं तमाल पत्रं चित्रक मुक्तं विशेषकं पुण्ड्रं' इति हलायुधः। स्फुटार्थमन्यत्।।६।।

पूर्व्वत्र उदि्दष्टं भक्ति द्वैविध्यं स्फुटयति नवधेति। विधिपूर्व्वा वैधी, रुचिपूर्व्वा तु रागानुगा, इति हरिभक्तिरसामृतेऽस्य विस्तरः। स्फुटार्थमन्यत्।।७।।

को जानना होगा, शास्त्र में श्रीहरिमन्दिराकृति श्रीहरिपदाकृति प्रभृति विविध प्रकार ऊर्ध्वपुण्ड्र वर्णित है, यह पुण्ड्र शुभदायक है।

नाम शब्द से पंचसंस्कार संख्यायुक्त नाम को जानना होगा, श्रीहरिः का भृत्यत्वबोधक नामकरण होता है। मन्त्र–अष्टदशाक्षरादि मन्त्र का बोधक है, वह मन्त्र स्वीय इष्टदेव के साक्षात् मूर्त्ति का स्वरूप है। यागशब्द से–श्रीशालग्रामादि के पूजन को जानना होगा। उक्त पंचसंस्कार का वर्णन–पुराणादि में विस्तृतरूप से है, प्रमाण की जिज्ञासा हो तो पुराणादि शास्त्रों में अवलोकन करें।।६।।

श्रवणादि नवविधभक्ति की कथा कही गयी है, वह विधिपूर्विका–रागपूर्विका भेद से द्विविध है अर्थात् वैधी, रागानुगा कहते हैं, इसके अनुष्ठान से भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर भक्त को अभीष्ट धाम प्रदान करते हैं।।७।।

रुच्यात्मकेन तेनासौ नृलिङ्गः परिपूज्यते ।।८।।
तुलस्यश्वत्थधात्र्यादि – पूजनं धाम निष्ठता।
अरुणोदयविद्धस्तु संत्याज्यो हरिवासरः।
जन्माष्टम्यादिकं सूर्य्योदयविद्धं परित्यजेत् ।।६।।

भक्ति भेदस्य भजनीय भेदमाह विधिनेति । चतुरिति, परमव्योमाधिपतिर्वासुदेवः। चतुर्व्वाहु रनिरुद्धश्च श्वेतद्वीपपतिः। आदिना अष्टभुजो दशभुजश्चेति। चतुर्भुजः श्यामलाङ्गः श्रीभूलीलाभिरन्वितः विमलै र्भूषणै र्नित्यैर्भूषितो नित्य विग्रहैः।। पञ्चायुधैः सेव्यमानः शङ्खचक्रधरो हरिः।।इति।। पीनायताष्टभुजमण्डलमध्यलक्ष्म्या स्पर्द्धच्छ्रिया परिवृतो वनमालयाद्य।।इति।। दशबाहुर्महातेजा देवतारिनिसूदनः। श्रीवत्साङ्को हृषीकेशः सर्व्वदैवतपूजितः।। इतिच स्मृतेः।। नृलिङ्गो यशोदा स्तनन्धयश्च।। इति वेदान्त स्यमन्तके अन्य विस्तारः।।८।।

तुलस्यश्वत्थेति। धामनिष्ठता निष्ठया श्रीमथुरादि धाम निवासः। सामर्थ्ये सत्येतच्छरीरेण, तदभावे भावनया, इति बोध्यं।। अरुणोदयेत्यादि, हरिभक्तिविलासे अस्य विस्तारः।।६।।

उक्त भक्ति भेद से भजनीय का भेद भी होता है, विधि भक्ति के द्वारा उपासित होकर भगवान् चतुर्बाहु, अष्टबाहु, दशबाहु विग्रह होते हैं। रागानुगा भक्ति के द्वारा मनुष्यरूपधारी भगवान् यशोदानन्दन, कौशल्यानन्दन रूप में पूजित होते हैं।।८।।

अनन्तर भक्ति के अनेक अंगों का वर्णन करते हैं। तुलसी, अश्वत्थ, धात्री आदि वृक्ष का पूजन, मथुरादि धाम में निवास करें अर्थात् सामर्थ्य होने से शरीर के द्वारा धाम वास करें अन्यथा भावना से करें। अनन्तर वैष्णव व्रत समूह का दिन निर्णय करते हैं अर्थात् वैष्णवस्मृति श्रीहरिविलास ग्रन्थ के अनुसार श्रीएकादशी प्रभृति व्रत किस रीति से पालनीय है, उसका वर्णन करते हैं। समस्त तिथियों

लोकसंग्रहमन्विच्छन्नित्यं नैमित्तिकं बुधः।
प्रतिष्ठितश्चरेत् कर्म्म भक्तिप्राधान्यमत्यजन्।।१०।।
दशानामापराधांस्तु यत्नतः परिवर्ज्जयेत्।।११।।

आश्रमस्थः प्रतिष्ठितो लब्धा महदासनश्चेत् तानि लोक संग्रहाय। कुर्य्यात् गौणकाले, भक्तिं तु तात्पर्य्येण अनुतिष्ठेत्। इति सुसूक्ष्मे भाष्ये, श्रीगीताभूषणे, च विस्तृतं। भक्ति सन्दर्भेऽपि एवमेव विस्तृतं द्रष्टव्यं।।१०।।

यानादिकृतहरिमन्दिरगमनादयः सेवापराधा वाराहादौ कथिताः। ते तु सन्तत सेवया मार्जनीयाः स्यु रिति ते वर्जनीया एव। ये च नामापराधा दश, पाद्मे दर्शिताः। तेषां तु सन्ततनामावृत्त्या विमार्जनं स्यात् तादृशानामावृत्तेश्च

में पूर्व विद्धा त्याज्य है, यह विद्धा अरुणोदय वेध एवं सूर्य्योदय वेध से द्विविध है, एकादशी तिथि में ही केवल अरुणोदय वेध को मानना होगा, अन्यत्र सूर्य्योदय विद्धा निश्चित है। एकादशी तिथि–अरुणोदय से अरुणोदय पर्य्यन्त पूर्णा है, प्रतिपद् प्रभृति तिथि–सूर्य्योदय से अपर सूर्य्योदयकाल तक पूर्णा है, अतएव उक्त समय में पूर्व तिथि का प्रवेश होने से तिथि विद्धा होती है। केवल एकादशी ही अरुणोदय विद्धा त्याज्या है, जन्माष्टमी प्रभृति तिथि समूह सूर्य्योदय विद्धा त्याज्या है, इसका विस्तृत विवेचन श्रीहरिभक्तिविलास ग्रन्थ में है।।६।।

स्वनिष्ठ, परिनिष्ठित, निरपेक्ष, त्रिविध भक्तत्रयअधिकारी व्यक्ति लोक शिक्षा के निमित्त शास्त्र विहित आचरण करे, स्वनिष्ठ, स्वाश्रमनिष्ठ व्यक्ति निष्कामभाव से स्वविहित अहिंस्र आश्रमोचितकर्माचरण करे, निरपेक्ष व्यक्ति आत्मार्पणकारी श्रीहरिभक्त, मात्र मानसिक भगवदर्च्चनादि कर्मानुष्ठान करे, परिनिष्ठित अर्थात् आश्रमस्थ व्यक्ति–लोक शिक्षा के निमित्त कर्मानुष्ठान करे, किन्तु सर्वथा भक्ति प्राधान्य की रक्षा अक्षुण्ण रूप से करे।।१०।।

दस नामापराध का वर्जन करे–(१) साधु निन्दा। (२) श्रीविष्णु से श्रीशिव नामादि का स्वातन्त्र्य मनन। (३) श्रीगुरुवर्ग की अवज्ञा।

कृष्णावाप्तिफलाभक्तिरेकान्तात्राभिधीयते।
ज्ञान वैराग्य पूर्व्वा सा फलं सद्यः प्रकाशयेत्।।१२।।

।। इति प्रमेयरत्नावल्यां विशुद्धभक्ते मुक्तिप्रदत्वप्रकरणं अष्टमंप्रमेयं।।

दुःशक्यत्वात् ते दश यत्नात् परिवर्जनीयाः इत्याह दश इति। (१) ते च, सतां निन्दा। (२) श्रीविष्णोः सकाशात् शिवनामादेः स्वातन्त्र्यमननं। (३) गुर्व्ववज्ञा। (४) श्रुति तदनुयायिशास्त्रनिन्दा। (५) हरिनाम महिम्नि अर्थवादमात्रमेतदिति मननं। (६) तत्र प्रकारान्तरेणार्थ कल्पनं। (७) नामबलेन पापे प्रवृत्तिः। (८) अन्य शुभक्रियाभिर्नाम्नां साम्यमननं। (९) अश्रद्दधाने विमुखे च नामोपदेशः। (१०) श्रुतेऽपि नाम्नां माहात्म्ये तत्राप्रीतिः।। इति ते चैते सनत्कुमारेण नारदं प्रति उपदिष्टा बोध्याः।।११।।

उपसंहरति कृष्णेति एकान्तेति। तदन्य फलतायां तु अनेकान्तता इत्यर्थः। सा चेत् ज्ञानादि पूर्व्वा स्यात्, तदा कृष्णावाप्ति लक्षणं फलं सद्यस्त्वरया प्रकाशयेत्, अन्यथा तु विलम्वेन। 'तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्य युक्तया। पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्तया श्रुतगृहीतया' इत्यादि, स्मृतेः।। ज्ञानं शास्त्रीयं।।१२।।

।। इति विशुद्धभक्ते मुक्तिप्रदत्वप्रकरणंव्याख्यातं।।

(४) श्रुति शास्त्र निन्दन। (५) श्रीहरिनाम माहात्म्य में अर्थवाद बुद्धि। (६) उसमें प्रकारान्तर से अर्थ की कल्पना। (७) नाम–माहात्म्य के बल से पापकर्म में प्रवृत्त होना। (८) अन्य शुभक्रिया के साथ नाम की समता करना। (९) अश्रद्धालु विमुख व्यक्ति को नामोदेश करना। (१०) नाम–माहात्म्य श्रवण करके भी प्रीति न करना।। यत्नपूर्वक इन सभी का वर्जन करे।।११।।

उपसंहार करते हैं–एकान्त भक्ति का फल–एकमात्र श्रीकृष्ण प्राप्ति ही है, भक्ति से उत्पन्न ज्ञान–वैराग्ययुक्त भक्ति सद्य फल प्रदान करती है अर्थात् शास्त्र ज्ञान एवं वहिर्विषय वितृष्णयुक्त भगवद्

नवमप्रमेयम्

।। अथ प्रत्यक्षानुमानशब्दानामेव प्रमाणत्वं ।।

यथा श्रीभागवते ।।११।१९।१७।

श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयं ।।इति ।।१।।
प्रत्यक्षेऽन्तर्भवेद्यस्मादैतिह्यं तेन देशिकः।
प्रमाणं त्रिविधं प्राख्यत् तत्र मुख्या श्रुति र्भवेत् ।।२।।

त्रीण्येव प्रमाणानि इति वक्तुमाह अथ प्रत्यक्षेति। प्रमाणानां त्रित्वमत्र प्रमेयम्। एवकारादेतदन्येषामुपमादीनामेषु त्रिष्वन्तर्भावान्नाधिक्यमिति वेदान्तस्यमन्तके प्रमाणनिरूपणे द्रष्टव्यम्। श्रुतेः प्राधान्यमभिप्रेत्य पूर्व्वं तामाह श्रुतिरिति।।१।।

नन्वैतिह्यमधिकं पठितं, त्रयं प्रमाणं कथमितिचेत् तत्राह प्रत्यक्षेऽन्तरिति। अनिर्द्दिष्टवक्तृकतागतपारम्पर्य्यप्रसिद्धमैतिह्यम्। यथा 'इहवटे यक्षो निवसति' इति तच्चादिमेन पुंसा दृष्टत्वात् प्रत्यक्षान्तर्गतमिति त्रयमेव प्रमाणं। देशिको

भक्ति से श्रीकृष्ण प्राप्ति सत्वर होती है अन्यथा विलम्ब होती है।।१२।।

।। इति प्रमेयरत्नावली में विशुद्ध भक्ति का मुक्तिप्रदत्व
प्रकरण नामक अष्टम प्रमेय ।।८।।

पूर्वाचार्य के मत में प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, तीन प्रमाण स्वीकृत हैं, एतद्व्यतिरिक्त प्रमाणादि श्रीमन्मध्वाचार्य्य के मत में उक्त प्रमाणत्रय में ही अन्तर्भुक्त हैं, इसका प्रतिपादन करते हैं—प्रत्यक्ष, अनुमाम, शब्द ये तीन प्रमाण हैं, श्रीमद्भागवत में उक्त है—श्रुति प्रत्यक्ष ऐतिह्य, अनुमान प्रमाण चतुष्टय हैं।।१।।

इसमें संशय हो सकता है कि प्रथमतः प्रमाणत्रय को कहकर पश्चात् श्रीमद्भागवत के प्रमाण के अनुसार प्रमाण चतुष्टय का वचन उठाया गया है, उसमें ऐतिह्य नामक प्रमाण अतिरिक्त स्वीकृत

प्रत्यक्षमनुमानञ्च यत्साचिव्येन शुद्धिमत्।
मायामुण्डावलोकादौ प्रत्यक्षं व्यभिचारि यत्।।
अनुमा चातिधूमेऽद्रौवृष्टिनिर्वापिताग्निके।
अतः प्रमाणं तत्तच्च स्वतन्त्रं नैव सम्मतम्।।३।।

मध्वमुनिः।। मनुश्चैव माह। 'प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमं। त्रयं सुविदितं कार्य्यं धर्म्मशुद्धिमभीप्सता।।' तत्र त्रिषु प्रमाणेषु मध्ये श्रुतिस्त्वपौरुषेयवाक्यसंहति र्मुख्या भवेत्, परमार्थप्रमापकत्वात्।।२।।

मुख्यत्वं दर्शयितुमाह प्रत्यक्षमिति। यत् साचिव्येन यस्य साहाय्येन शुद्धिमत् प्रमाजनकम्। यथा, दृष्टचरमायामुण्डस्य पुंसः भ्रान्त्या सत्येऽप्यविश्वस्ते

है। अतः निजकृत प्रमाणत्रय प्रतिपादन प्रतिज्ञा का विरोध उपस्थित होता है ? उत्तर में कहते हैं–'प्रत्यक्षं अनुमानञ्च शास्त्रञ्च विविधागमम्' त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता।। भा० १२।१०।५। तत्र तिषु प्रमाणेषु मध्ये श्रुतिस्त्वपोरुषेयवाक्यसंहति र्मुख्या भवेत् परमार्थ प्रमापकत्वात्' ऐतिह्य का अर्न्तभाव प्रत्यक्ष में होने से श्रीमन्मध्वाचार्य त्रिविध प्रमाण को ही मानते हैं, जिस विषय में वक्ता का निर्णय नहीं है, अथच कथानक परम्परा चली आती है, उसे ऐतिह्य कहते हैं, जैसे–'इस वटवृक्ष में यक्ष रहता है' इसको किसने देखा है, निर्णय नहीं है, किन्तु परम्परा चलती रहती है, प्रथम जिसने कहा था उसने देखकर ही कहा था, अतएव वह प्रत्यक्ष में ही अन्तर्भुक्त होता है, यह ऐतिह्य अतिरिक्त प्रमाण नहीं है, उक्त प्रमाणत्रय के मध्य में अपौरुषेय वाक्य श्रुति ही सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है।।२।।

एकमात्र श्रुति ही सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है, उसका प्रतिपादन पुनर्वार करते हैं–प्रत्यक्ष, अनुमान, उभय ही शब्द प्रमाण की सहायता से प्रमाजनक होते हैं, कारण मायामुण्ड अवलोकनादि में प्रत्यक्ष प्रमाण का सम्पूर्ण व्यभिचार होता है। वृष्टि निर्वापित अग्नि से जो

अनुकूलो मतस्तर्कः शुष्कस्तु परिवर्ज्जितः।।४।।

तदेवेदमित्याकाश वाण्या प्रत्यक्षं परिशुद्धं यथा च भोः शीतार्त्ताः पथिका माऽस्मिन् वह्निं सम्भावयत, दृष्टं मया वृष्ट्याऽत्राऽधुना न निर्व्वाणः। किन्तु अस्मिन् धूमोद्गारिणि शैले सोऽस्ति। इत्यनुमानं च परिशुद्धं।। स्वतन्त्रे तु ते सव्यभिचारे भवत इत्याह मायेति। यथा मायावी किञ्चनमुण्डं मायया दर्शयित्वा आह चैत्रस्य मुण्डमिदमिति। नच तत्तस्य। इति प्रत्यक्षस्य व्यभिचारः। वृष्ट्या तत्क्षणनिर्व्वापितवह्नौ चिरमधिकोदित्वर धूमे शैले, वह्निमान् धूमवत्वात्। इत्यनुमानस्य व्यभिचारः। नेत्र ज्वालाकरत्वादिधूम लक्षणं चात्रास्त्येव। अत इति स्फुटार्थम्।।३।।

तर्ह्यनुमानं परित्याज्यमितिचेत् तत्राह अनुकूलइति। श्रुत्यर्थ पोषकोऽनूकूलः।

धूम निर्गत होता है, उससे अनुमान का व्यभिचार होता है, अतएव प्रत्यक्ष अनुमान स्वतन्त्र प्रमाण नहीं है अर्थात् प्रथम यादुकर के द्वारा मायामुण्ड दर्शन के अनन्तर सत्य मुण्ड दर्शन से भी मिथ्या प्रत्यय नष्ट नहीं होता है, किन्तु यदि उस समय आकाशवाणी होती है–'यह मुण्ड सत्य है' तो पुनर्वार विश्वास उद्भूत होता है। इस प्रकार वृष्टि द्वारा निर्वापित अग्नि से अधिकतर धूम उत्थित होने पर अनुमान का व्यभिचार होने पर जो अविश्वस्त हुआ है, उसको यदि कोई कहता है कि 'मैंने देखा है पर्वत में जो धूम उत्थित हो रहा है, वह धूम वृष्टि के द्वारा निर्वापित वह्नि का ही है' उसमें अग्नि नहीं है, किन्तु इस पर्वत में जो धूम दृष्ट हो रहा है इसमें यथार्थ अग्नि है। इस स्थल में उक्त शब्द प्रमाण के साहाय्य हेतु विश्वास उत्पन्न होने से अनुमान भी परिशुद्ध होता है, अतएव प्रत्यक्ष अनुमान उभय ही स्वतन्त्र रूप से प्रभाजनक नहीं हो सकते हैं, शब्द की सहायता से ही प्रभाजनक होते हैं।।३।।

केवल शुष्क तर्क वर्जनीय है। श्रुत्यर्थ पोषक तर्क सर्वथा स्वीकार्य है, तद्विपरीत विरोध तर्क परित्याज्य है।।४।।

तथाहि वाजसनेयिनः।। बृहदा० २।४।५।।

आत्मा वा अरे दृष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।।इति।।

काठकाः।।२।६।

नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येन सुज्ञानाय प्रेष्ठ।।इति।।५।।

स्मृतिश्च—पूर्व्वापराविरोधेन कोऽत्रार्थोऽभिमतो भवेत्।।

इत्याद्यमूहनं तर्कः शुष्कतर्कन्तु वर्ज्जयेत्।।इति।।६।।

तद्विरोधी तु प्रतिकूल इत्यर्थः । तर्कस्य व्याप्तिग्रहे शङ्का—निवर्त्तकत्वेनानुमानाङ्गकत्वात् तदस्वीकारेण तदङ्गिनोऽनुमानस्याप्यस्वीकारो बोध्यः।।४।।

अनुकूल तर्काङ्गीकारे श्रुतिमाह आत्मनि। अरे मैत्रेयि ! आत्मा हरिर्द्रष्टव्यः साक्षात् कर्त्तव्यः। तत्र साधनमाह श्रोतव्यः वैदिकगुरुमुखात् श्रोत्रेण ग्राह्यः। मन्तव्यः वेदानुयायिना तर्केन निश्चेतव्यः। निदिध्यासितव्यो ध्यातव्यः। अत्र ध्यानमेव विधेयमप्राप्तत्वात् स्वाध्यायविधिप्राप्तत्वात् श्रवणस्य तत् प्रतिष्ठार्थत्वान्मननस्य चानुवाद एव।। प्रतिकूलतर्कत्यागे श्रुतिमाह नैषेति। हे प्रेष्ठ ! हे नचिकेत ! एषा ब्रह्मज्ञानार्हा मति स्त्वया शुष्केण तर्केण नापनेया न भ्रंशनीया। तर्हि ज्ञानं कथं भवेत् तत्रात्र प्रोक्तेति। अन्येन वैदिके गुरुणा प्रोक्ता उपदिष्टा सती सा सुज्ञानाय प्रमायै भाविनी इत्यर्थः।।५।।

अनुकूल तर्क की स्वीकृति के विषय में श्रुति प्रमाण दर्शाते हैं। यथा वाजसनेय श्रुति। 'अरे मैत्रेयि ! आत्मसाक्षात्कार का साधनभूत, प्रथमतः वैदिक सद्गुरु के समीप में श्रवण करे, पश्चात् श्रवणीय विषय का वेदान्तानुयायी तर्क के द्वारा मनन करे अर्थात् तदर्थ निश्चय करे एवं तदनन्तर निदिध्यासन करे। अनन्तर वेद विरोधी प्रतिकूल तर्क 'वेद विरोधि तर्क' परित्यागकारी श्रुति प्रमाण प्रदर्शन करते हैं, कठोपनिषद् में उक्त है—'हे प्रेष्ठ नचिकेत ! ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के योग्य यह मति है, इसे मात्र शुष्क तर्क के द्वारा भ्रंश करना

ना वेदविदुषां यस्मात् ब्रह्मधी रुपजायते।
यच्चौपनिषदं ब्रह्म तस्मान्मुख्या श्रुति र्मता।।

तथाहि श्रुतिः।।बृहदा० ३।६।२६।

नावेदविन्मनुते तं बृहन्तं।।इति।।
औपनिषदं पुरुषं पृच्छामि।।इति च।।७।।

।। इति प्रमेयरत्नावल्यां प्रमाणत्रित्वप्रकरणं नवमप्रमेयम्।।

।। एवमुक्तं प्राचा।।

श्रीमन्मध्वमते हरिः परतमः सत्यं जगत् तत्त्वतो–

उक्तां व्यवस्थां प्रमाणयन्ति पूर्व्वापरेति।।६।।

अन्वयव्यतिरेकाभ्यां च श्रुतेः प्राधान्यं दर्शयन् उपसंहरति नावेदेति। अवेदविदुषां वेदज्ञानरहितानां तार्किकादीनां यस्मात् ब्रह्मधी र्न जायते। इति व्यतिरेकः। यच्चौपनिषदं ब्रह्म इत्यन्वयश्च। नावेदेत्याद्युक्तार्थम्।।७।।

।। इति प्रमेयरत्नावल्यां प्रमाणत्रित्वप्रकरणं व्याख्यातम्।।

विधेय नहीं है। वेदज्ञ श्रीगुरु के द्वारा शिक्षिता होने से सुज्ञान के निमित्त होगी।।५।।

पुनश्च स्मृति प्रमाण प्रदर्शन पूर्वक उक्त व्यवस्था को प्रमाणित करते हैं। स्मृति में उक्त है–पूर्वापर के अविरोध से कौन–सा अर्थ अभिमत हो सकता है, इस प्रकार ऊहन ही तर्क है, वह ही ग्राह्य है, शुष्क तर्क का वर्जन करें।।६।।

अनन्तर अन्वय व्यतिरेक के द्वारा श्रुतिप्रामाण्य प्रदर्शन पूर्वक उपसंहार करते हैं। कारण वेद ज्ञान रहित केवल तर्कादि के द्वारा ब्रह्मज्ञान होना सम्भव नहीं है, ब्रह्मज्ञान, शास्त्रीय विषय है, ब्रह्म उपनिषद् प्रतिपाद्य है, अतएव श्रुति ही मुख्य प्रमाण है। वेदज्ञान व्यतीत ब्रह्मज्ञान हो ही नहीं सकता है, एतद् विषय में श्रुति को दर्शाते हैं, श्रुति यथा वेदज्ञान रहित व्यक्ति ब्रह्म को नहीं जान सकता है, हम उपनिषद् प्रतिपाद्य पुरुष की जिज्ञासा करते हैं।।७।।

।। इति प्रमेयरत्नावली में प्रमाणत्रित्व प्रकरण नामक नवम प्रमेय।।९।।

भेदो जीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्चभावं गताः।
मुक्ति नैंजसुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत्साधन–
मक्षादि त्रितयं प्रमाणमखिलाम्नायैकवेद्यो हरिः।।इति।।१।।
आनन्दतीर्थे रचितानि यस्यां प्रमेयरत्नानि नवैव सन्ति।
प्रमेयरत्नावलिरादरेण प्रधीभिरेषा हृदये निधेया।।२।।

यानि अस्मत् पूर्व्वाचार्य्येण प्रमेयान्युपात्तानि तान्येवात्र मयापीत्याह एवमुक्तं प्राचेति, श्रीमदिति। अनुचराः दासाः नित्याश्च। नीचोच्चभावं साधनभेदैः फलतारतम्यं। मुक्ति नैंजेति 'मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः।।' इति श्रीभागवतात्। वैमुख्यरचितं देवमानवादिभावं तत्साम्मुख्येन हित्वा साक्षात्कृतेन चित्सुखेन विज्ञातृणा स्वरूपेण स्थिति र्मुक्तिः इत्यर्थः।। अणुविज्ञान सुखं विज्ञातृ हरेर्दासभूतं जीवस्य नैजं रूपम्। दास्यं च तदङ्घ्रिलाभाविनाभूतमिति 'मोक्षं विष्ण्वङ्घ्रिलाभं' इत्यनेनाविरुद्धं। विकसितार्थमन्यत्।। ग्रन्थमुपसंहरं स्तस्योपादेयत्वमाह आनन्देति स्फुटार्थम्।।१।।

ग्रन्थमुपसंहरंस्तस्योपादेयत्वमाह–आनन्देति स्फुटार्थम्।।२।।

इस प्रकार पूर्व ग्रन्थ में नौ प्रमेय प्रतिपादन कर उक्त प्रमेय स्वकपोल–कल्पित नहीं है, उसका प्रतिपादन श्रीमदानन्दतीर्थ श्रीमन्मध्वाचार्यरचित विवरण के द्वारा करते हैं।

श्रीमन्मध्वाचार्य के मत में एकमात्र श्रीहरिः ही परतम वस्तु हैं, जगत् एवं तद्गत भेद भी सत्य है, जीवगण श्रीहरिः के अनुचर हैं परस्पर उच्चनीय भाव प्राप्त हैं अर्थात् साधन भेद से फलगत तारतम्य को प्राप्त करते हैं। भगवद् दासत्व की अनुभूति होना ही जीव की मुक्ति है, उत्तमाभक्ति ही मुक्ति का एकमात्र साधन है। प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द यह तीनं ही प्रमाण हैं एवं समस्त शास्त्रों से श्रीहरिः ही वेद्य हैं।।१।।

नित्यं निवसतु हृदये चैतन्यात्मा मुरारि र्नः।
निरवद्यो निर्वृतिमान् गजपतिरनुकम्पया यस्य।।३।।

।। इति श्रीबलदेवविद्याभूषणविरचिता प्रमेयरत्नावली पूर्तिमगात्।।

अन्तेऽपि हृदि स्वाभीष्टस्फुरणं मङ्गलमाचरति—नित्यमिति अत्र श्रीकृष्णः श्रीकृष्णचैतन्यः स्वपूर्वचतुर्थो रसिकमुरारिश्च इति त्रयः प्रतिपाद्यन्ते। प्रथमपक्षे चैतन्यात्मा चिद्विग्रहः। गजपतिर्ग्राहग्रस्तो गजेन्द्रः द्वितीये चैतन्यनामा आत्मा विग्रहः शच्यां जगन्नाथ मिश्रात् प्रकटः। गजपतिः प्रतापरुद्रो नृपतिः। तृतीये चैतन्यात्मा शचीसूनुनिविष्टचित्तः। गजपतिर्गोपालदासाख्यः करी।।

वेदान्तवागीशकृतप्रकाशा प्रमेयरत्नावलिकान्तिमाला।
गोविन्दपादाम्बुजभक्तिभाजां भूयात्सतां लोचनरोचनीयम्।।

।। इति प्रमेयरत्नावल्यां कान्तिमाला टिप्पणी सम्पूर्णा।।

भगवच्छ्रीमन्मध्वाचार्य आनन्दतीर्थ के द्वारा स्वीकृत नव प्रमेय के अनुसार ही नौ प्रमेयरूपरत्नपूर्ण 'प्रमेयरत्नावली' का ग्रहण सुधीगण आदर पूर्वक करेंगे।।२।।

अनन्तर उपसंहार श्लोक के द्वारा श्रीकृष्ण श्रीकृष्णचैतन्य, श्रीरसिकमुरारि की महिमा का प्रतिपादन कर स्वाभिलाष को व्यक्त करते हैं—जिनकी असीम अनुकम्पा से गजेन्द्र तथा गजपति उत्कलाधिपति प्रतापरुद्र नित्य सुखी हुए थे, श्रीचैतन्यदेव रसिकमुरारि हमारे हृदय में निवास करें। इति श्रीबलदेवविद्याभूषण निर्मिता प्रमेयरत्नावली समाप्ता।।

आषाढ़स्यासितेपक्षे चतुर्दश्यां गुरोर्दिने।
नेत्ररन्ध्रे ग्रहेरामे भाषेषं पूर्णता गता।।

।। इति प्रमेयरत्नावली समाप्ताः।।

।। श्रीश्रीगौरगदाधरौ जयतः।।

अनन्यरसिकशिरोमणिमहामहिमश्रीमाध्वगौड़ीय–
आचार्यगोस्वामिश्रीहरिरामव्यासमहोदयेन
विरचितम्

नवरत्नम्

।। श्रीश्रीगोपीजनवल्लभो जयति।।

।। प्रथमम्।।

कृष्णं नौमि किशोरं, राधादिभिरर्च्चितं प्रीत्या।
सुलभं वृन्दाविपिने, निखिलेशं भक्तिलेशतो वश्यम्।।१।।
जयति श्रीमध्वरविर्यतः प्रकाशो बभूव भक्तिमयः।
प्रविनाश किल तमसो मायावादादिदुर्व्वचसः।।२।।
वन्दे श्रीगोविन्दे, धृताशयान्वैष्णवानहं शश्वत्।
यत्कृपया हरिरामो व्यासस्तनवै स्वपद्धतिं सूक्ष्मां।।३।।

प्रणम्य सच्चिदानन्दं गौरगदाधरं प्रभुम्।
नवरत्नमितांव्याख्यां करोति हरिदासकः।।

श्रीराधादि ब्रजसुन्दरियों के द्वारा प्रीति पूर्वक सेवित, वृन्दाविपिन में सुलभ, भक्तिमात्रवश्य निखिलेश, किशोर स्वरूप श्रीकृष्ण को मैं प्रणाम करता हूँ।।१।।

श्रीमन्मध्वाचार्य रवि की जय हो, जिन्होंने भक्ति किरण का प्रकाश किया एवं उससे मायावादादिदुर्वचन रूप अन्धकार विनष्ट हुआ।।२।।

स्मर्त्तव्या सततं सद्भिः स्वीया गुरुपरम्परा।
सिद्ध्यत्येकान्तिता नैषां सिद्धिहेतु र्यया विना।।४।।

तदुक्तं पाद्मे–

सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते विफला मताः।
अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः।।
श्रीब्रह्मरुद्रसनका वैष्णवा क्षितिपावना इति।
रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्य्यं चतुर्म्मुखः।
श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रो निम्बादित्यं चतुःसनः।। (क)

निजा सा यथा–

श्रीकृष्णो भगवान् ब्रह्मा नारदो बादरायणः।
श्रीमध्वः पद्मनाभश्च नृहरिर्माधवश्च सः।।५।।

श्रीगोविन्द में मन, प्राण सर्वस्व अर्पण परायण वैष्णवों को मैं निरन्तर वन्दन करता हूँ, जिनकी कृपा से मैं हरिरामव्यास, निज सम्प्रदाय पद्धति का वर्णन संक्षेप से कर रहा हूँ।।३।।

सत्पुरुषों को निज गुरु–परम्परा का निरन्तर स्मरण करना कर्त्तव्य है, कारण उसके बिना ऐकान्तिकी भक्ति सिद्ध नहीं हो सकती है।।४।।

पद्मपुराण में लिखित है–सम्प्रदाय विहीन मन्त्र समूह निष्फल होते हैं, तज्जन्य कलियुग में चार सम्प्रदाय होंगे, उसके प्रवर्त्तक, श्री=लक्ष्मी, ब्रह्मा, रुद्र, सनकादि वैष्णव सम्प्रदाय होंगे, ये सम्प्रदाय समूह जगत्पावन हैं।

श्री ने–सम्प्रदाय प्रवर्त्तक रूप में श्रीरामानुज को, श्रीब्रह्मा ने–मध्वाचार्य को, रुद्र ने–श्रीविष्णुस्वामी को एवं चतुःसन ने–श्रीनिम्बादित्य को अंगीकार किया। (क)

निज गुरु–परम्परा निम्नोक्त रूप से है–भगवान् श्रीकृष्ण, ब्रह्मा, नारद, वेदव्यास, श्रीमध्व, पद्मनाभ, नृहरि, माधव, अक्षोभ्य, जयतीर्थ, ज्ञानसिन्धु, दयानिधि, विद्यानिधि, राजेन्द्र, जयधर्ममुनि,

अक्षोभ्यो जयतीर्थश्च ज्ञानसिन्धुर्दयानिधिः।
विद्यानिधिश्च राजेन्द्रो जयधर्म्ममुनिस्ततः।।६।।
पुरुषोत्तमो ब्रह्मण्यो व्यासतीर्थश्च तस्य हि।
लक्ष्मीपतिस्ततः श्रीमान् माधवेन्द्र यतीश्वरः।।७।।
ईश्वरस्तस्य माधवो राधाकृष्णप्रियोऽभवत्।
तस्याहं करुणापात्रं हरिरामाभिधोऽभवमिति।।८।।

इति श्रीगुरुप्रणालिकोद्देशः।

यान्यार्यो नवरत्नानि प्रमेयाण्याह सः प्रभुः।
श्रीमध्वस्तत्ववादीन्द्रस्तानि मे सम्मतानि हि।।६।।

तानि यथा–

हरिः परतमः सत्यं जगद्भेदस्तु तात्त्विकः।
जीवाः श्रीविष्णुदासास्तत्तारतम्यं परस्परं।।
मुक्तिर्हरिपदप्राप्तिस्तद्धेतु र्भक्तिरुत्तमा।
प्रत्यक्षादित्रयं मानं वेदवेद्यस्तु माधवः।।इति।। (क)

पुरुषोत्तम, ब्रह्मण्य, व्यासतीर्थ, श्रीमान् लक्ष्मीपति, यतिप्रवर माधवेन्द्र, इनके शिष्य–ईश्वर एवं माधव थे, उन श्रीमाधवजी का ही शिष्य मैं हरिरामव्यास हूँ। इस प्रकार मेरी गुरु–परम्परा का वर्णन नामतः हुआ।।५–८।।

तत्त्ववादीन्द्र प्रभु श्रीमन्मध्वाचार्य्य ने जो नव–प्रमेय का वर्णन किया है, उक्त प्रमेय समूह को ही मैं मानता हूँ।।६।।

उक्त प्रमेय निकर इस प्रकार हैं–श्रीहरिः ही परतम तत्त्व हैं, जगत् सत्य है, जीव के साथ ईश्वर का भेद तात्त्विक है, जीवगण श्रीकृष्ण के नित्यदास हैं, जीव एवं श्रीहरिः में नित्य तारतम्य है, श्रीहरिः चरण प्राप्ति ही मुक्ति है, उसका कारण उत्तमाभक्ति है। प्रत्यक्ष, अनुमान श्रुति प्रमाणत्रय हैं, श्रीमाधव वेद वेद्य हैं।। (क)

तत्र हरेः परतमत्वं–तथाहि श्वेताश्वतराः पठन्ति–

तश्मीश्वराणां परमं महेश्वरं तद्दैवतानां परमं च दैवतं।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्।।

आह च भगवान् स्वयं–

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जयेति।। (ख)

सहेतुः सच्चिदानन्दो ज्ञानादिगुणवान् विभुः।
राधादिशक्तिको नित्यधामलीलोऽस्त्यतस्तथा।।१०।।

तत्र तस्य हेतुत्वमुक्तं श्वेताश्वतरे–

सकारणं कारणाधिपाधिपो न तस्य कश्चिज्जनिता नचाधिप इति।।

स्मृतिश्च–

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्व्वकारणकारणमिति।।

उनमें से प्रथम श्रीहरिः का परतमत्व स्थापन करते हैं– श्वेताश्वतर उपनिषद् में उक्त है–ब्रह्मादि ईश्वरों के ईश्वर, परम महेश्वर, देववृन्दों के परम देवता, पतियों के परमपति, समस्त परमतत्त्व से भी परमतत्त्व, भुवन वन्दनीय, स्तुत्य क्रीड़ाशील परमेश्वर को जानते हैं। श्रीभगवान् ने स्वयं ही कहा है–'हे धनंजय ! मुझसे अपर कोई भी वस्तु परतर नहीं है।।' (ख)

सत्चिदानन्दस्वरूप ज्ञानादि गुणवान् बिभु श्रीराधादि शक्ति के सहित नित्यधाम में लीलारत हैं, आप निज बहिरंगा शक्ति के द्वारा जगत् का उपादान कारण होते हैं।।१०।।

हेतुत्व का प्रमाण–श्वेताश्वतर में है–'जगत् का मूल कारण वह हैं, कारण समूह के अधिपों के भी आप अधिप हैं, उनका कोई जनक नहीं है एवं अधिप भी नहीं हैं।' स्मृति ब्रह्मसंहिता में भी उक्त है–'श्रीकृष्ण–ईश्वर, परम, सच्चिदानन्द हैं, उनसे कोई आदि में नहीं है, आप सबके आदि हैं, आप गोविन्द हैं और सकल कारणों के कारण हैं।'

आनन्दो ब्रह्मेति विजानातीति च आथर्वणिकाश्च।
तमेव गोविन्दं सच्चिदानन्दविग्रहं इति।। (ग)
चिदानन्दस्य मूर्त्तत्वं रागवत् प्रतिभाति तत्।
विपक्षे कोपमध्येति श्रुतिरित्याह सद्गुरुः।।११।।
देह–देहिभिदा नास्तीत्यपि सुष्ठुः प्रदर्शितम्।
गुणिनो न गुणा भिन्नाः श्रुतिस्मृतिविनिश्चयात्।।१२।।

अथ ज्ञानादिगुणत्वं–तथा ह्याथर्वणिकाः पठन्ति। यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तप इति। तैत्तिरीयाश्च–आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न विभेति कुतश्चनेति। शरण्यत्वसौहार्द्दाद्यश्च श्वेताश्वतरैः पठिताः। सर्व्वस्य शरणं सुहृदिति।।

आथर्वण श्रुति कहती है–'आनन्दब्रह्म को जानती हूँ, उन सच्चिदानन्द गोविन्द का ध्यान करती हूँ।। (ग)

सच्चिदानन्द ब्रह्म का विग्रह, संगीत के रागादि में मूर्त्ति का साक्षात्कार जिस प्रकार होता है, उस प्रकार सच्चिदानन्द वस्तु भी मूर्त्त है, उसका अनुभव भी होता है। भक्ति का अभाव होने से मूर्त्ति का अनुभव नहीं होता है, यह ही श्रुति सिद्धान्त है अन्यथा श्रुति सिद्धान्त की हानि होगी। यह अभिमत श्रीमन्मध्वाचार्यपाद का है।।११।।

श्रीहरिः के शरीर में देह–देही भेद मायिक शरीर के समान नहीं हैं, इसका प्रदर्शन भी उत्तम रूप से हुआ है।

सम्प्रति ज्ञानादि गुणवत्ता को कहते हैं। आथर्वण श्रुति में उक्त है–'जो सर्वज्ञ सर्ववित् हैं, जिनका ज्ञानमय तपः है', तैत्तिरीयक उपनिषद् में उक्त है–'आनन्दमय ब्रह्म को जानकर भयमुक्त होता है।' श्वेताश्वतर में सौहार्द्र–'शरण्यत्व गुण का उल्लेख भी है, ब्रह्म सबके शरण्य एवं सुहृद् हैं', श्रुति स्मृति का निश्चय है कि–'गुणी से गुण समूह भिन्न नहीं है'।।१२।।

तथाहि कठाः पठन्ति–

यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति।
एवं धर्म्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति।।इति।। (घ)

श्रुत्यन्तरे च–

ब्रह्मणस्तद्गुणानाश्च भेददर्श्यधमं तमः।
भेदाभेदप्रदर्शी तु मध्यमं तु तमो व्रजेदिति।।

एवमेवाह ब्रह्मा–

गुणात्मनस्तेऽपि गुणान्विमातुं हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्येति।

श्रीपराशरश्च–

अनन्तकल्याणगुणात्मकोऽसौ स्वशक्तिलेशाद्भृतमूतसर्ग।।इति।। (ङ)

हरेर्देहो गुणाश्चेति भेदोक्तिर्यापि दृश्यते।
राहुमूर्द्धवदेवासौ मन्तव्या तत्त्ववादिभिः।।१३।।

कठोपनिषद् में उक्त है, जिस प्रकार वर्षा का जल उन्नत प्रदेश से निम्नतर प्रदेश में जाता है, उस प्रकार गुण समूह को ईश्वर से पृथक् देखने से द्रष्टा अधोगामी होता है।। (घ)

श्रुत्यन्तर में लिखित है–'ब्रह्म एवं उनके गुणों को उनसे पृथक् देखने से अधमतम नरक की प्राप्ति होती है तथा भेदाभेद देखने से मध्यमतम नरक की प्राप्ति होती है।'

श्रीब्रह्मा ने भी ऐसा ही कहा है–'आप निखिल कल्याण गुणगण रत्नाकर हैं, जगज्जनों के हित के निमित्त आप अवत्तीर्ण होते हैं, आपके गुण समूहों का निर्णय करने में कौन समर्थ होगा।'

श्रीपराशरजी ने कहा–

श्रीहरिः अनन्त कल्याणगुण रत्नाकर हैं, निज शक्ति के लेशमात्र से ही समस्त सृष्टि को धारण करते हैं।। (ङ)

श्रीहरिः एवं उनके गुण समूहों के विषय में जो भी भेदोक्ति देखने में आती है, वह राहु एवं उसके सिर के समान जानना होगा।।१३।

एवमाह भगवान् पतञ्जलिः—शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्प इति। उदाहरतिभाष्यकारः—चैतन्यं ब्रह्मणःस्वरूपमिति।। (च)

अथ विभुत्वं—तथाहि कठाः पठन्ति।

तैत्तिरीयाश्च—

यच्च किञ्चिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा।
अन्तर्वहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः।।इति।। (छ)

अथ राधादिशक्तिकत्वं—तथाहि ऋक्परिशिष्टश्रुतिः 'राधया माधवो देवो माधवेनैव राधिका। विभ्राजते जनेष्विति' पुरुषबोधिन्यामथर्वोवनिषदि च—गोकुलाख्ये माथुरमण्डल इत्युपक्रम्य द्वे पार्श्वे चन्द्रावली राधिका चेति उत्तरत्र तस्याद्या प्रकृती राधिका नित्या निर्गुणा सर्वालङ्कारशोभिताशेषलावण्य सुन्दरीत्यादि।

परात्मिका पराशक्तिर्या श्रुत्यादिषु पठ्यते।
ह्लादिन्यादिस्वरूपा सा राधिकेति विदुर्बुधाः।।१४।।

भगवान् पतञ्जलि ने भी उस प्रकार कहा है—'शब्दज्ञान के अनुसरणकारी वस्तु शून्य विकल्प है, भाष्यकार ने इसके उदाहरण में कहा है—'ब्रह्म का स्वरूप चैतन्य है।।' (च)

अनन्तर विभुत्व के विषय में कहते हैं—'कठोपनिषद् में उक्त है—'महान् विभु आत्मा को जानकर धीर व्यक्ति शोकग्रस्त नहीं होता है।' तैत्तिरीयक में कथित है—'इस जगत् में जो भी वस्तु देखने—सुनने में आती है, उसके अन्तर—बाहर श्रीनारायण व्याप्त होकर रहते हैं।।' (छ)

अनन्तर श्रीराधादि शक्ति का वर्णन करते हैं, ऋक्परिशिष्ट श्रुति इस प्रकार है—'श्रीराधा के सहित श्रीमाधव एवं श्रीमाधव के सहित श्रीराधा विराजित हैं।' पुरुषबोधिनी, अथर्वोपनिषद् में लिखित है—'गोकुल नामक मथुरामण्डल में इस प्रकार कथन का आरम्भ कर पार्श्वद्वय में चन्द्रावली श्रीराधिका हैं, आगे कहा—उनकी आद्याशक्ति श्रीराधिका हैं, वह नित्या, गुणातीता, सर्वालङ्कार शोभिता अशेष लावण्य सुन्दरी हैं।।१४।।

तथाहि श्वेताश्वतराः पठन्ति–परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया चेति।

स्वाभाविकीति कथिता सा स्वरूपानुबन्धिनी।
ज्ञानेति भण्यते सम्यक् सन्धिनी ह्लादिनीति च।।१५।। (ज)

श्रीपराशरश्च–

यातीतागोचरा वाचां मनसा च विशेषणा।
ज्ञानिज्ञानपरिच्छेद्यां वन्दे तामीश्वरीं परामिति।।
ह्लादिनी सन्धिनी सम्वित्त्वय्येका सर्वसंश्रये।
ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते इति।।

अथोक्तं गौतमीयतन्त्रे श्रीभगवता–

सत्त्वं तत्त्वं परत्त्वं च तत्त्वत्रयमहं किल।
त्रितत्त्वरूपिणी सापि राधिका मम वल्लभा।।
प्रकृतेः पर एवाहं सापि मच्छक्तिरूपिणीति।। (झ)

श्रुतियों में जिनका वर्णन परात्मिका पराशक्ति रूप में है, बुधगण उन्हें ही ह्लादिन्यादिस्वरूपा श्रीराधिका मानते हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् में उक्त है–'श्रीहरिः की विविध पराशक्ति हैं, वह स्वाभाविकी हैं, ज्ञान, बल, क्रियारूपा हैं। स्वाभाविकी शब्द का अर्थ स्वरूपानुबन्धिनी जानना होगा, उसे ह्लादिनी, सम्वित्सन्धिनी नाम से जानना होगा'।।१५।। (ज)

श्रीपराशरजी ने कहा है–'जो वाणी एवं मन की अगोचरा, ज्ञानियों के ज्ञान से अनुभूता पराशक्तिरूपी ईश्वरी को मैं वन्दन करता हूँ। निखिल तत्त्वों के आश्रयरूप आपमें केवल ह्लादिनी सन्धिनी सम्वित् शक्ति है, आप प्राकृत, सत्त्व, रजः, तमोगुण वर्जित हैं, सत्त्वगुण प्राकृत आनन्दप्रद, रजोगुण–'विक्षेपकारक एवं तमोगुण अप्रकाशकारक प्राकृत गुण समूह आपमें नहीं हैं। वे सब जीव में हैं।'

श्रीगौतमीयतन्त्र में श्रीभगवान् ने कहा है–'मैं सत्त्व, तत्त्व, परत्त्व, कार्य, कारण, नियन्तारूप तत्त्वत्रयरूप जिस प्रकार मैं हूँ,

श्रीकृष्णो भगवान् पूर्णः पूर्णा तस्या हि राधिका।

तदुक्तं प्रथमस्कन्धे–

एते चांशकला पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयमिति।

दशमस्कन्धे च–

अष्टमस्तु तयोरासीत्स्वयमेव हरिः किलेति।

गौतमीये च–

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता।
सर्वलक्ष्मीमयी कान्तिः शक्तिः सम्मोहिनी परेति।।
वैदूर्य्यवदचिन्त्यत्वादंशित्वांशत्वमाक् स्वयं।।१६।।

यदुक्तं नारदपंचरात्रे–

मणिर्यथा विभागेन नीलपीतादिभिर्युतः।
रूपभेदमवाप्नोति ध्यानभेदात्तथाच्युत।। (ञ)

उस प्रकार मेरी वल्लभा श्रीराधिका भी त्रितत्त्वरूपिणी हैं, मैं प्रकृत्यतीत हूँ, श्रीराधिका भी मेरी शक्तिरूपिणी हैं।। (झ)

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ण हैं उनकी प्रिया श्रीराधिका पूर्णा हैं। श्रीमद्भागवत के प्रथमस्कन्ध में उक्त है–'उपरिउक्त अवतारणगण कारणार्वशायी पुरुष की अंशकला हैं, किन्तु श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं।' दशमस्कन्ध में वर्णित है–'वसुदेव–देवकी के यहाँ अष्टम बालकरूप में स्वयं श्रीहरिः आविर्भूत हुए थे।' गौतमीयतन्त्र में लिखित है–'परदेवता श्रीराधिकादेवी, श्रीकृष्णमयी हैं। सर्वलक्ष्मी, सर्वकान्ति एवं सम्मोहिनी पराशक्ति हैं। वैदुर्य्यमणि के समान अचिन्त्यशक्ति से अंशित्व, अंशत्व की प्रतीति उनमें स्वयं होती है।। (१६)

श्रीनारदपंचरात्र में कथित है–

जिस प्रकार मणि–'नील पीतादि भेद से नील पीतादि रूप धारण करती है, उस प्रकार श्रीअच्युत भी भक्तों के ध्यान भेद से रूप भेद को प्राप्त करते हैं।। (ञ)

मूर्त्तिः सार्वत्रिकी तस्य शक्तिव्यक्त्या तदीक्षणं।।१७।।

तथाहि वाजसनेयिनः पठन्ति–

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमदुच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यतेति।।

महावाराहे च–

सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः।
हानोपादानरहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचिद्।।
परमानन्दसन्दोहा ज्ञानमात्राश्च सर्वतः।
सर्वे सर्वगुणैः पूर्णाः सर्वदोषविवर्जिता इति।।
तदाह यत्र तज्ज्ञः स्वाद्विप्रः षट्शास्त्रविद्यया।
तारतम्यं तथा शक्तिर्व्यक्त्यव्यक्तिकृतं भवेत्।।१८।। (ट)

श्रीहरिः की मूर्ति सर्वत्र अवस्थित है, जब आप निज शक्ति से प्रकट होते हैं, तब उनका दर्शन होता है।।१७।।

वाजसनेयिगण कहते हैं–'श्रीहरिः स्वयं पूर्ण हैं, उनका अवतार भी पूर्ण है, अवतारीरूप एवं अवताररूप उभय ही पूर्ण होते हैं, अवतारीरूप से जो भी अवतार होता है, वह पूर्ण होता है, पूर्ण से पूर्ण ग्रहण करने पर भी पूर्ण ही अवशेष रह जाता है।'

महावाराह पुराण में उक्त है–'परमात्मा श्रीहरिः के शरीर समूह, नित्य शाश्वत हैं, क्षय, वृद्धि रहित हैं एवं प्राकृत उपादान से कभी निर्मित नहीं होते हैं। सर्वगुण पूर्ण, सर्वदोष वर्जित, परमानन्द सन्दोह एवं सर्व प्रकार से ज्ञान पूर्ण हैं। जिस प्रकार षट्शास्त्रविद् पण्डित के व्याख्यान में जब जो विषय प्रकाशित होता, श्रवणकारी व्यक्ति पण्डित को उस विषय का ज्ञाता मानता है। विभिन्न विषयों के श्रोता के समक्ष विभिन्न प्रकार पाण्डित्य से वह पण्डित प्रकाशित होता है, उस प्रकार श्रीहरिः में भी प्रकाश का तारतम्य होता है, इस प्रकार प्रकाश का तारतम्य शक्ति प्रकाश के तारतम्य से होता है, शक्ति प्रकाश का तारतम्य भी भक्तगण की योग्यता के तारतम्य से होता है।।१८।। (ट)

अथ नित्यधामत्वं–तथाहि छान्दोग्येषु श्रूयते। स भगवः कस्मिन्नुप्रतिष्ठितेति स्वे महिम्नि इति। मुण्डके च–'दिव्ये पुरे ह्येष संव्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठित इति।' ऋक्षु च–'तां वां वास्तून्युष्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयास।' अत्राह–'तदुरुगायस्य कृष्णस्य परमं पदमवभाति भूरीति अग्रे स्वमहिमन्यादे धाम्नो नित्यत्वमागतम्।'

तथाहि नारदपंचरात्रे–'जितन्ते स्तोत्रे'–

लोकं वैकुण्ठनामानं दिव्यषड्गुण्यसंयुतं।
अवैष्णवानामप्राप्यं गुणत्रयविवर्जितं।।
नित्यसिद्धैः समाकीर्णं तन्मयैः पाञ्चकालिकैः।
सभाप्रासादसंयुक्तं वनैश्चोपवनैः शुभं।।
वापीकूपतडागैश्च वृक्षषण्डसुमण्डितं।
अप्राकृतै सुरैर्वन्द्यमयुतार्कसमप्रभम्।।

।। इत्यादि।। (ठ)

• अनन्तर नित्य धामत्व का वर्णन करते हैं, छान्दोग्य उपनिषद् में कथित है, भगवान् कहाँ निवास करते हैं ? उत्तर–'अपनी महिमा में।' मुण्डकोपनिषद् में उक्त है–'दिव्य पुर में श्रीविभु भगवान् प्रतिष्ठित हैं।' ऋक् में उल्लिखित है–'श्रीरामकृष्ण के धाम को जानना चाहते हैं, जहाँ अनेक प्रशस्त शृंगयुक्त धेनुवृन्द का निवास है।' इस विषय में कहा है–'उरुगाय श्रीकृष्ण के अनेक परमधाम विलसित हैं, इसके पश्चात् स्वमहिमा शब्द से स्वरूपशक्ति में प्रतिष्ठित हैं, बोध होने पर धाम समूह का नित्यत्व प्रतिपादन हुआ।'

श्रीनारदपंचरात्र स्थित जितन्तस्तोत्र में उक्त है–'श्रीभगवान् का वैकुण्ठ नामक दिव्य धाम है, वह दिव्य षड्गुणों से युक्त है, अवैष्णवों को अलभ्य है, सत्त्वादि गुणत्रय से रहित है, नित्य सिद्ध भक्तगणों के द्वारा शोभित है, वे सब अभिगमन, उपादान, इज्या, स्वाध्याय, समाधि के द्वारा श्रीप्रभु का भजन करते हैं, वहाँ सभा, प्रासाद, वन, उपवन, मनोहर वापी, कूप, तड़ाग, कल्पतरु समूह हैं, वह दिव्य सुरगणों से वन्दनीय है एवं अनन्त सूर्य सदृश कान्तियुक्त है।।' (ठ)

यदा प्रादुर्भवत्येष विहर्त्तुं जगति प्रभुः।
प्रागेव तस्य धामापि तत्र प्राकट्यमश्नुते।।१६।।
श्रीकृष्णे सच्चिदानन्दे नरदारकता यथा।
अज्ञैः प्रतीयते तद्वद्धाम्नि प्राकृतता किल।।२०।।
विपक्षे तु विरोधः स्यात् श्रुत्यादिरिति तद्विदः।।२१।।

तथा आथर्वणीश्रुतिः। 'तासां मध्ये साक्षात् ब्रह्म गोपालपुरीति। स्मृतिश्च–

सहस्रपत्रं कमलं गोकुलाख्यं महत्पदं।
तत्कर्णिकारं तद्धाम तदनन्तांशसंभवमिति।। (ङ)

नित्यलीलत्वं च–एको देवो नित्यलीलानुरक्तो भक्तव्यापी भक्तहृद्यन्तरात्मेति श्रवणात्।

जन्म कर्म्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन !।।

इस मर्त्त्यलोक में प्रकट होने की इच्छा जब प्रभु की होती है, उसके पूर्व में ही उनके धाम का प्राकट्य होता है।।१६।।

प्राकृत मनुष्यगण श्रीकृष्ण को जिस प्रकार प्राकृत मनुष्य मानते हैं, उस प्रकार उनके धाम को भी प्राकृत लोक प्राकृत मानते हैं।।२०।।

अज्ञजनों के कथन के सहित श्रुति वाक्य का विरोध है। आथर्वणी श्रुति कहती है–'उन सबके मध्य में गोपालपुरी गोलोक गोकुल साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है।' स्मृति में उक्त है–'सहस्र दल कमल के समान सुमहान् स्थान गोकुल है, उसकी कर्णिका में श्रीभगवान् का निवास स्थान है, वह अनन्तांश से प्रतिष्ठित है एवं श्रीबलभद्रजी भी वहाँ पर विराजते हैं।।' (ङ)

नित्य लीलत्व का वर्णन करते हैं–'अद्वय तत्त्वरूप श्रीभगवान् निरन्तर लीला परायण हैं, भक्तजनों में ही रहते हैं एवं भक्तजनों के

यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्म्मकः।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् इति।।स्मरणाच्च।। (ढ)

।। इति प्रथमरत्ननिर्णयः समाप्तः।।

द्वितीयरत्ननिर्णयः

अथ जगत्सत्यत्वं–तथाहि छान्दोग्यादिषु पठ्यते। सदेव सौम्येदमग्र आसीदिति, आत्मा वा इदमग्र आसीदिति ब्रह्म वा इदमग्र आसीदिति च।

प्रलयेऽपि जगत्सत्स्याद्वनलीनविहङ्गवत्।
वैराग्यार्थमसत्त्योक्तिरिति प्राहुर्मनीषिणः।।२२।।

हृदय तथा अन्तरात्मा हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में उक्त है–'मदीय जन्म कर्म समूह को जो वास्तव मानता है, वह शरीर त्याग करने के पश्चात् पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं करता है, मुझको ही प्राप्त करता है।' श्रीमद्भागवत में उक्त है–'जिस प्रकार मैं हूँ तथा मेरा भाव भी जिस प्रकार है तथा गुण एवं कर्म जिस प्रकार हैं उसका परिज्ञान यथायथरूप से मेरे अनुग्रह से तुम्हारा हो।। (ढ)

अनन्तर जगत् सत्यत्व का प्रतिपादन करता है। छान्दोग्य प्रभृति में उक्त है–'हे सौम्य ! यह सृष्टि के पूर्व में भी था, यह आत्मा सबसे प्रथम में था, ब्रह्म सबके आदि में था।

वन में जिस प्रकार विहंग रहता है, उस प्रकार प्रलय में जगत्, ईश्वर में अवस्थान करता है, जगत् को समय–समय में असत् कहा जाता है, वह कथन वैराग्य उत्पन्न कराने के निमित्त है। मनीषिगण उस उक्ति का अर्थ वैसा ही जानते हैं।।२२।।

अतः, उक्तं पराशरेण–

तदेतदक्षयं नित्यं जगन्मुनिवराखिलं।
आविर्भावतिरोभावजन्मनाशविकारवदिति।।

भारते च–

ब्रह्म सत्यं तपः सत्यं सत्यं चैव प्रजापतिः।
सत्याद्भूतानि जातानि सत्यं भूतमयं जगदिति।।
नभो नैल्यादिवद् माति शुद्धे विश्वस्य ये जगुः।
निरस्ताः किल ते तस्याविषयत्वादिहेतुभिः।।२३।।

।। इति द्वितीयरत्ननिर्णयः समाप्तः।।

तृतीयरत्ननिर्णयः

अथ भेदस्य तात्विकत्वं–यथाहि श्वेताश्वतराः पठन्तिः–

द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानवृक्षं परिसस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति।।

अतएव श्रीविष्णु पुराण में श्रीपराशरजी ने कहा है– 'हे मुनिवर ! अखिल जगत् नित्य अक्षय है, किन्तु आविर्भाव, तिरोभाव, जन्म, नाश विकारयुक्त रूप से वह प्रतीत होता है।'

महाभारत में लिखित है–

ब्रह्म सत्य है, तपः सत्य है, प्रजापति भी सत्य है, सत्य से ही समस्त भूत उत्पन्न हुए हैं, भूतमय जगत् सत्य ही है।

मायावादिगण कहते हैं–'आकाश की नीलमादि के समान शुद्ध ब्रह्म में जगत् भासमान है। वह कथन निरस्त हुआ, कारण ब्रह्म इन्द्रिय वेद्य नहीं है।।२३।। (ण)

भेद सत्य है–श्वेताश्वतर में उक्त है–'एक ही देहरूप वृक्ष में जीव ईश्वररूप पक्षीद्वय सौहार्द से निवास करते रहते हैं, दोनों में

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यति अन्यमीशमस्य महिमानमेति वीतशोकः इति च।।
मुण्डके च–

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिं।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनं परमसाम्यमुपैतीति।।

काठके च–

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति,
एवं मुने विजानत आत्मा भवति गौतमेति।।

गीतायां–

इदं ज्ञानमुपाश्रित्येति।। (त)
ब्रह्माहमेके जीवोऽस्मिन्नान्ये जीवा न चेश्वरः।
मदविद्याकल्पितास्ते स्युरितीत्थं निराकृतं।।२४।।

से जीवात्मा स्वकृत कर्म फलों का आस्वादन करता है, किन्तु परमात्मा उसमें अनासक्त होते हैं एवं स्वीय स्वरूप शक्ति से महीयान् होकर रहते हैं और आसक्त होकर जीवात्मा मुग्ध हो जाता है। जीव देहरूप वृक्ष में आसक्त होकर दुःख को प्राप्त करता है, जब वह अपने से भिन्न ईश्वर को देखता है अर्थात् ध्यान करता है, तब वह समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है और ईश्वर के महिमारूप धाम को प्राप्त करता है। जिस समय साधक सुवर्णवर्ण, विश्वस्रष्टा ईश्वर ब्रह्मयोनि पुरुष को देखता है, तब वह पुण्य–पापों से मुक्त होकर मुक्त होता है और निरंजन होकर परम समता को प्राप्त करता है।

काठक में उक्त है–'जिस प्रकार शुद्ध जल में शुद्ध जल निक्षिप्त होने से पूर्व जल के समान ही निक्षिप्त जल होता है, उसे आत्मज्ञ पुरुष भी परमात्मा की समता को प्राप्त करता है।' गीता में भी उक्त है–'इस प्रकार ज्ञान प्राप्त कर जीव मेरे समान धर्म को प्राप्त करता है।। (त)

मैं ब्रह्म हूँ, जीव–अपर नहीं है, न तो ईश्वर ही है, वे सबही मेरी अविद्या से ही कल्पित हैं। मायावादिगण का इस प्रकार कथन पूर्वोक्ति से खण्डन हुआ।।२४।।

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति।
कामानिति, कठश्रुतेश्च–

एकस्मादीश्वरान्नित्या श्चेतनास्तादृशा मिथः।
भिद्यन्ते बहवो जीवास्तेन भेदोऽस्ति तात्त्विकः।।२५।।
मुक्तौ भेदश्रुतेस्तस्य तथात्वे नास्ति संशयः।
अद्वैतं ब्रह्मणो भिन्नमभिन्नं वा त्वयोच्यते।।२६।।
आद्ये द्वैतापत्तिरन्त्ये सिद्धसाधनताश्रुतेः।
तुच्छं स्यान्निर्गुणं वस्तु प्रमाणाविषयत्वतः।।२७।।
श्रद्धेयं विदुषां नैवेत्याह तत्त्वविदां गुरुः।
नीरूपस्य विभो र्न स्यात् प्रतिबिम्बः कदापि हि।।२८।।

कठोपनिषद् में उक्त है–'परमेश्वर नित्य जीव प्रकृति कालकर्म प्रभृति नित्य वस्तुओं में नित्यत्त्व चेतन समूहों में चेतनत्व प्रदान करने के साथ–साथ एक होकर भी अनेक जीवों की कामनाओं का विधान करते हैं, निज अन्तःकरण में स्थित उन परमेश्वर का ध्यान जो धीर व्यक्ति करता है उसको शाश्वती शान्ति मिलती है, अपर को नहीं, एक ईश्वर से नित्य चेतन परस्पर विभिन्न अनेक जीव होते हैं, अतएव भेद नित्य है'।।२५।।

मुक्ति में भी भेद सुनिश्चित रूप से रहता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है, यदि अभेद ही कहा जाय तो पूछना है कि–वह अद्वैत ब्रह्म से भिन्न है ? अथवा अभिन्न है ? भिन्न होने से अद्वैत तत्त्व नहीं रहेगा, वह द्वैत हो जायगा। यदि अद्वैत हो तो सिद्ध–साधन ही होगा। ब्रह्म निखिल प्रमाणों का अविषय होने से निर्गुण अति तुच्छ है।।२६–२७।।

तत्त्वविद् गुरु श्रीमन्मध्वाचार्य कहते हैं–'उक्त सिद्धान्त अश्रद्धेय है। विभु तथा रूपहीन का कोई प्रतिबिम्ब नहीं होता है।।२८।।

गुणवृत्त्या तु तच्छास्त्रं सङ्गतिं प्रतिपद्यते।
प्राणैकाधीनवृत्तित्वाद्वागादेः प्राणता यथा।।२६।।
तथा ब्रह्माधीनवृत्ते र्जगतो ब्रह्मतोच्यते।।३०।। (थ)

छान्दोग्ये श्रूयते–

न वै वाचो न चक्षुंषि न श्रोत्राणि न मनांसि इत्याचक्षते
प्राण इत्येवाचक्षते प्राणो ह्येवैतानि सर्व्वाणि भवति।।

श्रीभागवते–

द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च।
यदनुग्रहतः सन्ति न सन्ति यदुपेक्षया इति।।
ब्रह्म व्याप्यत्वतः केचिद् तद्ब्रह्म जगतो जगुः।।३१।।

तथाहि गीतासु–

सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्व इति।
तस्मात्तात्त्विको भेदः।। (द)

।। इति तृतीयरत्ननिर्णयः समाप्तः।।

ब्रह्मसूत्र में इसका सिद्धान्त है–'प्रतिबिम्ब का कथन गौणवृत्ति से जानना होगा, वाणी प्रभृति को भी प्राण कहते हैं, कारण वे सब प्राण के अधीन हैं'।।२६।।

उस रीति से जगत् को ब्रह्म कहा जाता है, कारण–जगत् ब्रह्माधीन है।।३०।।

छान्दोग्य श्रुति में वर्णित है–'इन्द्रिय समूह प्राणाधीन हैं, वाक्, नेत्र, श्रोत्र, मन को पृथक् शब्द से न कहकर उसे प्राण ही कहते हैं, कारण यह समस्त इन्द्रियाँ प्राणस्वरूप हैं।

श्रीमद्भागवत में उक्त है–'द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव, जीव इनके अनुग्रह से अवस्थित हैं और इनकी उपेक्षा से स्थिति दुर्घट हो जाती है। ब्रह्म के व्याप्य होने से जगत् को ब्रह्म कहते हैं।।३१।।

श्रीगीता में उक्त है–'सबमें व्याप्त होकर रहने से ही आपको सर्व कहते हैं, अतएव भेद तात्त्विक है।। (द)

चतुर्थरत्ननिर्णयः

तत्र श्रुतिः—अथ जीवानां भगवद्दासत्वं।
तमीश्वराणां परमं महेश्वरं इत्याद्या।

स्मृतिश्च—

ब्रह्मा शम्भुस्तथैवार्कः चन्द्रमाश्च शतक्रतुः।
एवमाद्या तथा चान्ये युक्ता वैष्णवतेजसेत्याद्या।।
स ब्रह्मकालरुद्राश्च सेन्द्रा देवा महर्षिभिः।
अर्च्चयन्ति सुरश्रेष्ठं देवं नारायणं हरिमित्याद्याच।।
एवं प्रकृतिकालौ च तद्दासौ परिकीर्त्तितौ।।३२।।

तथाहि श्वेताश्वतराः पठन्ति—

स विश्वकृद्विश्वकृदात्मयोनि र्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविश्वः।
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः संसारबन्धस्थितिमोक्षहेतुरिति।। (घ)

।। इति चतुर्थरत्ननिर्णयः समाप्तः।।

जीव समूह भगवद्दास हैं—'श्वेताश्वतर श्रुति में लिखित है—ब्रह्म, रुद्र प्रभृति ईश्वरों के परम महेश्वर, इन्द्रादि देवताओं के परमदेव, दक्षादि प्रजापतियों के पति सर्वोत्कृष्ट अखिल भुवन के ईश तथा सबकी स्तुति के योग्य देव को हम परतत्त्व रूप में प्राप्त करते हैं।' स्मृति में उक्त है—'ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, चन्द्र प्रभृति देवगण वैष्णव अर्थात् श्रीविष्णु के तेज से प्रकाशित हैं। ब्रह्म, रुद्र, काल, देवगण, इन्द्र तथा महर्षिगण सुरश्रेष्ठ देव श्रीनारायण हरिः की अर्च्चना करते रहते हैं। इस प्रकार प्रकृति काल भी श्रीहरिः के दास हैं'।।३२।।

श्वेताश्वतर में उक्त है—'वह श्रीहरिः विश्वकर्त्ता हैं, आत्मयोनि हैं, सर्वज्ञ हैं, काल के संचालक हैं, गुणी हैं, समस्त विश्वरूप हैं, प्रधान क्षेत्रज्ञ जीव के पति हैं, गुणों के स्वामी हैं और संसारबन्ध, स्थिति, मोक्ष के हेतु हैं'।। (घ)

पंचमरत्ननिर्णयः

अथ जीवानां तारतम्यं—

अणु चैतन्यरूपाः स्युर्जीवा ज्ञानादिधर्म्मिणः।
हृदयस्था गुणान् व्याप्तिस्तेषां देहेषु कीर्त्तितेति।।३३।।

तथा श्वेताश्वतरैः पठ्यते—

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः सविज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते।।

मुण्डके च—एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा विवेशेति। षट्प्रश्नांश्चः—एष हि द्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मंता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुष इति। हृदि ह्येष आत्मेति च। श्रीगीतायां—यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः। क्षेत्रंक्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारतेति। आह चैवं भगवान् सूत्रकारः। गुणाद्वा लोकवदिति।। नित्याश्च गुणा अविनाशी वा अरे अयमात्मानुच्छित्तिधर्मेति बृहदारण्यकान्।

—जीवों में तरतमता—

जीवगण अणु परमाणु होते हैं, चैतन्य रूप हैं, ज्ञानादि धर्मी हैं, हृदय में निवास कहते हैं, समस्त देहों में उसके गुणों की व्याप्ति होती है।।३।।

श्वेताश्वतर में लिखित है—'केश के अग्र भाग को शत भाग से विभक्त करने से जिस प्रकार सूक्ष्मता होती है, उस प्रकार सूक्ष्म अंश जीव है, जीव समूह अनन्त होते हैं।' मुण्डक में उक्त है—'आत्मा अणु परिमित है, चित्त से जानना होगा, जिसको अवलम्बन कर प्राण रहते हैं, यह जीव ही द्रष्टा, श्रोता, घ्राण लेने वाला, रस लेने वाला, मन्ता (मननशील) बोद्धा, कर्त्ता एवं विज्ञानात्मा पुरुष है।' श्रीगीता में उक्त है—'हे भारत ! जिस प्रकार एक रवि जगत् को उद्भासित करता है, उस प्रकार समस्त देह को जीवात्मा प्रकाशित करता है।

एवं स्वरूपसाम्येऽपि भवेत्साधनभेदतः।
जीवानां तारतम्यं च बोध्यमत्र परत्र च।।३४।। (न)

तत्र परतस्तारतम्यमुक्तं छान्दोग्ये–'यथा क्रतुरस्मिन् लोके पुरुषो भवति तथेत्य प्रेत्य भवतीति।' श्रीगीतासु च–'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां स्तथैव भजाम्यहं, इति।

शान्त्यादिरतिपर्यन्ता भावाः पञ्चैव ये स्मृता।
तैः कृष्णं भजतां विज्ञैस्तारतम्यं मिथो मतम्।।३५।। (प)

।। इति पंचमरत्ननिर्णयः समाप्तः।।

वेदान्तसूत्रकार भगवान् श्रीव्यासदेव ने कहा है–'गुणाद् वा लोकवत्।।२।३।२४।।, जिस प्रकार प्रदीप निज प्रकाश से समस्त गृह को आलोकित करता है, उस प्रकार जीवात्मा भी निज चैतन्य गुणों से समस्त देह को चेतन करता है।' वाजसनेयिगण कहते हैं–'गुण समूह उनके नित्य हैं, अरे मैत्रेयि ! यह आत्मा अविनाशी है और जो ज्ञानादि चैतन्य गुणधर्म हैं, वह भी उच्छेद नाश से रहित हैं।'

जीवों में स्वरूपगत साम्य होने से भी साधन भेद से परस्पर जीवों में भेद होता है। यह नियम इस जगत् में एवं पर जगत् में समान रूप से रहता है।।३४।।

तारतम्य की वार्त्ता छान्दोग्योपनिषद् में है। जीव जिस प्रकार संकल्प कर तदनुरूप साधन करता है, उस साधन के अनुरूप फल प्राप्त करता है। श्रीगीता में भी उक्त है–'जो जिस प्रकार मेरा भजन करता है, मैं भी उसी प्रकार उसका भजन करता हूँ। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर भाव से श्रीकृष्ण का भजन होता है, इस प्रकार भाव भेद से परस्पर जीवों में तारतम्य होता है।।३५।। (प)

षष्ठरत्ननिर्णयः

हरिपदप्राप्तिलक्षणा मुक्तिः ! तथाहि श्वेताश्वतराः पठन्तिः—

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैः जन्ममृत्युप्रहाणिः।
तस्याभिधानात्तृतीयं देहभेदे विश्वैश्वर्य्यकेवलमाप्तकामः।।

तृतीयं वैष्णवं ह्येतच्चांद्रब्राह्माद्यपेक्षया।
केवलं तद्विशुद्धं स्यादित्याहु र्वेदवादिनः।।३६।।

श्रीभागवते च—

पिवन्ति ये भगवत आत्मनः सतां कथामृतं श्रवणपुटेषु संभृतं।
पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं ब्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम्।।

भवेत्परपदप्राप्ति र्दासानामर्च्चिरादिभिः।
आर्त्ताणां हरिणैवेति निश्चितं तत्त्ववादिभिः।।३७।। (फ)

।। इति षष्ठरत्ननिर्णयः समाप्तः।।

—श्रीहरिपद प्राप्तिरूपा मुक्ति—

श्वेताश्वतर में उक्त है—'श्रीहरिः का बोध कर लेने पर समस्त बन्धन नष्ट हो जाते हैं, अविद्या अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेशरूप पंच क्लेश नाश होने से जन्म—मृत्यु परम्परा नष्ट होती है। श्रीहरिः के भजन से लिंग देह नष्ट होता है एवं अप्राकृत पार्षद देह को प्राप्त कर जीव कृतार्थ होता है।

तृतीय शब्द से वैष्णवपद प्राप्त होता है, वह गति चान्द्र ब्राह्मादि गति से भिन्न गति है, वेदवादिगण को उससे केवल विशुद्ध पार्षद गति मिलती है।।३६।।

श्रीमद्भागवत में कथित है—'जो जन परमप्रिय श्रीभगवान् की कथामृत महत्मुख से श्रवण कर श्रवण पुट में धारण करते हैं वे सब विषयवासना से अपने को मुक्त कर लेते हैं और श्रीप्रभु के चरणारविन्दों के समीप में अवस्थान करते हैं।

सप्तमरत्ननिर्णयः

अथ भक्तेर्मुक्तिहेतुत्वं—

साधूनां बन्धुवत्सेवा गुरोश्च हरिवत्ततः।
अवाप्तपञ्चसंस्कारो लब्धद्विविधभक्तिकः।।३८।।

तत्र साधुसेवा—तथाहि तैत्तिरीये—अतिथिदेवो भव।

श्रीभागवते च—

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं निष्किञ्चनानां न वृष्णीत यावत्।।

गुरुदेवा यथा—श्वेताश्वतरश्रुतौः—

यस्य देवे पराभक्ति र्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।इति।।

दासगण की भगवत्—प्राप्ति अर्च्चिरादि मार्ग से होती है, आर्त्त भक्तगणों को परपद की प्राप्ति श्रीहरिः के द्वारा ही होती है, तत्त्ववादियों का यह निर्णय है।।३७।। (फ)

भक्ति ही मुक्ति का एकमात्र कारण है। साधुगण की सेवा सद्बन्धु की बुद्धि से करे एवं श्रीगुरुदेव की सेवा श्रीहरिबुद्धि से करे, श्रीगुरुदेव से पंचसंस्कार प्राप्त कर द्विविध भक्ति का अधिकारी होता है, वैधी रागानुगा भेद से भक्ति द्विविध है।।३८।।

तैत्तिरीयक उपनिषद् में साधुसेवा का वर्णन है—'अतिथि की देवताबुद्धि से सेवा करें।'

श्रीमद्भागवत में उक्त है—'निष्किञ्चन अर्थात् श्रीहरिः में ही जिनका महत्त्व है, इस प्रकार महानुभावों की चरणरेणु से जो जन अपने को अभिषिक्त नहीं करते हैं, उनकी मति श्रीकृष्ण के श्रीचरण—कमलों को स्पर्श नहीं करती है, महत्गण की चरणधूलि से अनर्थ

श्रीभागवते च–

तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपसमाश्रयमिति।। (व)

गुरोर्लब्धपञ्चसंस्काराः यथा स्मृतौ–

तापः पुण्ड्रं तथा नाम मन्त्रो यागश्च पञ्चमः।
अमी हि पञ्चसंस्काराः परमेकान्तहेतवः।।इति।।
तापोऽत्र हरिनामादिमुद्राणामुपलक्षणं।।३६।।

यथोक्तं स्मृतौं–

हरिनामाक्षरै गीत्रमङ्कयेच्चन्दनादिभिः।
स लोकपावनो भूत्वा तस्य लोकमवाप्नुयात्।।इति।।
हरिपादाकृतिं प्रोक्तमूर्द्धपुण्ड्रं शुभास्पदं।
नामात्र कथितो विज्ञैर्हरिभृत्यत्वबोधकम्।।४०।।

अपसारित होता है। श्वेताश्वतर श्रुति में गुरुसेवा का उल्लेख है, जिसकी इष्टदेव में उत्तमभक्ति है, जिस प्रकार देवता में भक्ति है, उस प्रकार ही श्रीगुरुदेव में भक्ति करे, ऐसा करने से ही महात्मा के द्वारा कथित उपदेश का प्रभाव उन पर पड़ता है।। (व)

श्रीमद्भागवत में कथित है–'इसलिए उत्तम श्रेय जिज्ञासु व्यक्ति श्रीगुरु–चरणों में शरण ग्रहण करे, किन्तु श्रीगुरु शास्त्रज्ञ अनुभवी एवं आचरण परायण होना तथा एकान्त आवश्यक है।। (व)

श्रीगुरुदेव से प्राप्त पंचसंस्कार समूह इस प्रकार स्मृति में वर्णित है–'ताप, पुण्ड्र, नाम, मन्त्र, याग ये पाँच संस्कार, परमैकान्तिकता अर्थात् भक्ति लाभ के एकमात्र हेतु हैं।

ताप संस्कार का अर्थ –'तप्त शंख चक्रादिमुद्रा धारण है और इसी संस्कार के कारण चन्दनादि द्वारा श्रीहरिनामादि मुद्रा धारण करना भी उपलक्षित है'।।३६।।

चन्दनादि के द्वारा अपने शरीर में श्रीहरिनामादि मुद्रा धारण करना है। स्मृति में उक्त है–'चन्दनादि के द्वारा श्रीहरिनामादि अक्षरों से

मन्त्रोऽष्टादशवर्णश्च षट्वर्णश्च क्रमात्तयोः।
श्रीकृष्णराधयोरर्च्चा विधानार्थमुरीकृता।।४१।।
यागशब्देन कथितं शालग्रामादिपूजनं।।४२।।

अथ गुरोर्लब्धाद्विविधभक्ति र्यथा—श्रीभागवते च—

तत्र भागवतान् धर्मान् शिक्षेद्गुर्व्वात्मदैवतः।
अमाययानुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मात्मदो हरिरिति।।
नवधा भक्तिर्गदिता विधिरुचिपूर्वाथ सा मता सद्भिः।
यया संप्रसन्नः कृष्णो ददाति तत्तदीप्सितं धाम।।४३।।

जो अपने शरीर को अंकित किये हुए हैं, वे समस्त लोक को पवित्र करके श्रीहरिः के नित्य धाम को प्राप्त करते हैं। .

मंगलमय श्रीहरिपादाकृति तिलक को ऊर्ध्वपुण्ड्र कहते हैं, श्रीहरिः के दासत्वबोधक संज्ञा को 'नाम' कहते हैं।।४०।।

मन्त्र—'षड्क्षर एवं अष्टदशाक्षर हैं, यह मन्त्र श्रीराधाकृष्ण की अर्चना हेतु प्रकाशित हैं'।।४१।। (म)

याग शब्द का अर्थ—'श्रीशालग्रामादि का पूजन है।।४२।।

श्रीगुरुदेव के समीप वैधी भक्ति एवं रागानुगीय भक्ति प्राप्त करने का संवाद श्रीमद्भागवत में है, लक्षणाक्रान्त गुरुवरण के अनन्तर उनके समीप से भागवतधर्म की शिक्षा करे, शिक्षण के समय श्रीगुरुदेव को आत्मवत् प्रिय माने तथा निज देवबुद्धि से देखे, निष्कपट भाव से परिचर्य्या प्रणिपात, जिज्ञासा पूर्वक भागवतधर्म का शिक्षण करने से आत्मा तथा आत्म प्रदानकारी श्रीहरिः भी सन्तुष्ट होते हैं।

भक्ति नव प्रकार की हैं, उसमें भी विधि एवं रुचि अर्थात् विधि भक्ति एवं रागानुगीय भक्ति भेद से भक्ति द्विविध है, जिसके आचरण से श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर निज धाम में निवास करने की योग्यता प्रदान करते हैं।।४३।।

नवधाभक्तिर्यथा श्रीभागवते–

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं।
अर्च्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनं।।
इति पुंसार्पिता विष्णोर्भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तममिति।। (म)
विधिनाभ्यर्च्चितो देवश्चतुर्वाह्वादिरूपधृक्।
रुच्यात्मकेन तेनासौ नृलिङ्गः परिपूज्यते।।४४।।

यथा ह्याथर्वणिकैः पठ्यते–

सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्बरं।
द्विभुजं मौनमुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरमिति।।
तुलस्यश्वत्थविप्रादिसत्कारो धामनिष्ठता।।४५।।
अरुणोदयविद्धस्तु संत्याज्यो हरिवासरः।
जन्माष्टम्यादिकं सूर्योदयविद्धं परित्यजेत्।।४६।।

नवधाभक्ति का विवरण श्रीमद्भागवत में है। श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य एवं श्रीप्रभु में आत्म–निवेदन रूप है। श्रीविष्णु में आत्म–समर्पण करके यदि मानव उक्त भक्ति का अनुष्ठान करते हैं, तो उसे उत्तम अध्ययन कहा जयगा, यह मत श्रीप्रह्लादजी का है।। (म)

विधिमार्ग से श्रीहरिः का चतुर्वाहु रूप पूज्य होता है, रुचि (रागानुगीय) भक्ति से श्रीप्रभु के मनुष्य रूप की अर्च्चना होती है।।४४।।

आथर्वणिकगण कहते हैं–

मनोहर कमलनयन, नीलनीरद कान्ति पीतवसनधारी, द्विभुज, मौनमुद्रायुक्त, वनमाली श्रीकृष्ण का ध्यान करे।

तुलसी, अश्वत्थ, विप्रादि को सम्मान प्रदान करे एवं श्रीहरि के धाम में निष्ठा रखे।।४५।।

हरिवासर श्रीएकादशी, अरुणोदय विद्धा वर्जन करे, जन्माष्टमी प्रभृति व्रत में सूर्य्योदय विद्धा त्याग करे, मानवों को शिक्षा देने के

लोकसंग्रहमन्विच्छन्नित्यनैमित्तिकं चरेत्।
दशनामापराधांस्तु त्यजेद्विद्वानशेषतः।।४७।।
कृष्णप्राप्तिफलाभक्तिरुत्तमात्र प्रकीर्त्तिता।
ज्ञानवैराग्यपूर्वा सा कृष्णं सद्यः प्रकाशयेत्।।४८।। (य)

।। इति सप्तमरत्ननिर्णयः समाप्तः।।

अष्टमरत्ननिर्णयः

अथ प्रत्यक्षादि प्रमाणत्रयं—यथोक्तं श्रीभागवते—
श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयमिति।
प्रत्यक्षेऽन्तर्भवेद्यस्मादैतिह्यं तेन देशिकः।।४६।।
प्रमाणं त्रिविधं प्राख्यं तत्र मुख्या श्रुतिर्मता।

मानवों को शिक्षा देने के निमित्त नित्य नैमित्तिक कर्म का अनुष्ठान करे एवं दशविध नामापराध का वर्जन यत्नपूर्वक करे।।४६।।

यहाँ पर उत्तमाभक्ति से ही श्रीकृष्ण प्राप्ति होती है, उत्तमाभक्ति का लक्षण श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु में इस प्रकार है।।४७।।

'अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।'

वह भक्ति शास्त्रीय ज्ञान—वैराग्य युक्त होने से सत्त्वर श्रीकृष्ण—प्राप्ति उससे होती है।।४८।। (य)

अनन्तर प्रत्यक्षादि प्रमाणत्रय का वर्णन करते हैं। श्रीमद्भागवत में उक्त है—'श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं' चार प्रमाण हैं। प्रत्यक्ष में ऐतिह्य का समावेश होता है, अतः आचार्य्यों ने तीन प्रकार प्रमाण को माना है। मुख्य प्रमाण—'श्रुति है, श्रुति से ही श्रीभगवत्तत्त्व का परिज्ञान होता है।।४६।।

इस विषय में श्रुति प्रमाण—'वेदादि शास्त्रहीन व्यक्ति ब्रह्म को

यथावद्भगवत्तत्वं तया यत्परिचीयते।।५०।।

तथा च श्रुतिः–

नावेदविन्मनुते तं बृहन्तमिति।
औपनिषदं पुरुषं पृच्छामीति।। (र)

।। इति अष्टमरत्ननिर्णयः समाप्तः।।

नवमरत्ननिर्णयः

अथ हरेर्वेदवाच्यत्वं–सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति,
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति इति।।

हरिवंशे च–

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते।।
साक्षात् परम्पराभ्यां च सर्वे वेदाः हरिं जगुः।
त्रय्यन्तास्तु जगुः साक्षात्तं परम्परया परे।।५१।।
क्वचिद्क्वचिदवाच्यत्वं श्रुत्यादौ यद्विलोक्यते।
कार्त्स्न्येन वाच्यं न भवेदिति स्यात्तस्य सङ्गति।।५२।।

जानने में समर्थ नहीं होता। हम उपनिषद् प्रतिपाद्य पुरुष को जानना चाहते हैं।।५०।।

वेद प्रतिपाद्य श्रीहरिः हैं। कठ श्रुति–'समस्त वेद जिनके चरण–कमलों को कहते हैं तथा तपस्या समूह जिनको प्रकाश करते हैं।'

हरिवंश में उक्त है–'वेद, रामायण, पुराण, भारत के आदि–अन्त–मध्य में श्रीहरिः वर्णित हैं। साक्षात् एवं परम्परा से समस्त वेद श्रीहरिः को कहते हैं। उपनिषद्गण साक्षात् रूप से तथा अन्य शास्त्र समूह परम्परा से वर्णन करते हैं।।५१।।

शब्दप्रवृत्तिहेतूनां जात्यादीनाममभावतः।
ब्रह्म निर्धर्म्मकं वाच्यं नैवेत्याहु र्विपश्चितः।।५३।।
सर्व्वैः शब्दैरवाच्ये तु लक्षणा न भवेदतः।
लक्ष्यं च न भवेद्धर्म्महीनं ब्रह्मेति मे मतं।।५४।। (ल)
तस्माद्वृन्दावनाधीशो नन्दसूनुः सराधिकः।
नित्योऽनन्तगुणः सद्भि संसेव्यो वेदवादिभिः।।५५।।

।। इति नवमरत्ननिर्णयः समाप्तः।।

नवरत्नमयीमेतां मालां कण्ठे वहन् बुधः।
सौन्दर्य्यातिशयात् कृष्णो दृश्यतां प्रतिपद्यते।।५६।।
सजातीयपरायैषा प्रदेया रत्नमालिका।
न देया भक्तिहीनाय मर्कटाय कदाचन।।५७।। (व)

कहीं–कहीं पर श्रुति में अवाच्यत्व का वर्णन आता है, उसका तात्पर्य यह है कि–'भगवान् सम्पूर्ण रूप से अवाच्य हैं'।।५२।।

विद्वान्गण कहते हैं–'ब्रह्म में जात्यादि न होने से शब्द के द्वारा ब्रह्म कथित नहीं है।' शब्द–'जात्यादि धर्म विशिष्ट को कहता है'।।५३।।

शब्द समूह के द्वारा जो अवाच्य होता है, उसमें लक्षणा नहीं होती है, ब्रह्म धर्महीन है, अतः ब्रह्म लक्ष्य नहीं हो सकता है। यह मत मेरा है।।५४।। (ल)

अतएव श्रीराधिका के सहित श्रीवृन्दावनाधीश नन्दनन्दन सज्जन विज्ञजनों के पूज्यनीय हैं, श्रीनन्दनन्दन–अनन्त नित्य अनन्त गुण पूर्ण हैं।।५५।।

बुधगण नवरत्नमयी इस माला को कण्ठ में धारण कर अति शोभित होते हैं और श्रीकृष्ण का दर्शन करते हैं। सजातीय

इति श्रीअनन्यरसिक शिरोमणि

श्रीहरिरामव्यासकृत

श्रीगुरुपरम्परा नवरत्ननिर्णयः समाप्तः।।

प्राचीनवाक्यं-

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं।
रम्या काचिदुपासना ब्रजबधूवर्गेण या कल्पिता।।
शास्त्रं भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्।
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्म्मतमिदं तत्रादरो नः परः।।

व्यक्ति को इस मालिका का प्रदान करें, भक्तिहीन मर्कट को इसका प्रदान कभी भी न करें।।

।। इति श्रीअनन्यरसिक शिरोमणि श्रीहरिरामव्यासकृत
श्रीगुरुपरम्परा नवरत्ननिर्णयः समाप्तः।।

शास्त्रिणा हरिदासेन वृन्दारण्यनिवासिना ।
प्रणीता विमला भाषा निर्मत्सरसतांमुदे ।।

श्रीहरिदास शास्त्री सम्पादिता ग्रन्थावली

१—वेदान्तदर्शनम् भागवतभाष्योपेतम्	१५०.००
२—श्रीनृसिंह चतुर्दशी	१०.००
३—श्रीसाधनामृतचन्द्रिका	२०.००
४—श्रीगौरगोविन्दार्चन पद्धति	२०.००
५—श्रीराधाकृष्णार्चन दीपिका	२०.००
६—७—८—श्रीगोविन्दलीलामृतम्	४००.००
९—ऐश्वर्यकादम्बिनी	३०.००
१०—श्रीसंकल्पकल्पद्रुम	३०.००
११—१२—चतुःश्लोकीभाष्यम् श्रीकृष्णभजनामृत	३०.००
१३—प्रेमसम्पुट	४०.००
१४—भगवद्भक्तिसार समुच्चय	३०.००
१५—व्रजरीतिचिन्तामणि	४०.००
१६—श्रीगोविन्दवृन्दावनम्	३०.००
१७—श्रीकृष्णभक्तिरत्न प्रकाश	५०.००
१८—श्रीहरेकृष्णमहामन्त्र	५.००
१९—श्रीहरिभक्तिसारसंग्रह	५०.००
२०—धर्म संग्रह	५०.००
२१—श्रीचैतन्यसूक्तिसुधाकर	१०.००
२२—श्रीनामामृतसमुद्र	१०.००
२३—सनत्कुमार संहिता	२०.००
२४—श्रुतिस्तुति व्याख्या	१००.००
२५—रासप्रबन्ध	३०.००
२६—दिनचन्द्रिका	२०.००

२७—श्रीसाधनदीपिका	६०.००
२८—स्वकीयात्वनिरास परकीयात्वप्रतिपादन	८०.००
२९—श्रीराधारससुधानिधि मूल	२०.००
३०—श्रीराधारससुधानिधि सानुवाद	१००.००
३१—श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम्	३०.००
३२—श्रीगौरांग चन्द्रोदय	३०.००
३३—श्रीब्रह्मसंहिता	५०.००
३४—भक्तिचन्द्रिका	३०.००
३५—प्रमेयरत्नावली एवं नवरत्न	५०.००
३६—वेदान्तस्यमन्तक	४०.००
३७—तत्वसन्दर्भः	१००.००
३८—भगवत्सन्दर्भः	१५०.००
३९—परमात्मसन्दर्भः	२००.००
४०—कृष्णसन्दर्भः	२५०.००
४१—भक्तिसन्दर्भः	३००.००
४२—प्रीतिसन्दर्भः	३००.००
४३—दशःश्लोकी भाष्यम्	६०.००
४४—भक्तिरसामृतशेष	१००.००
४५—श्रीचैतन्यभागवत	२००.००
४६—श्रीचैतन्यचरितामृतमहाकाव्यम्	१५०.००
४७—श्रीचैतन्यमंगल	१५०.००
४८—श्रीगौरांगविरुदावली	४०.००
४९—श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृत	१५०.००
५०—सत्संगमम्	५०.००
५१—नित्यकृत्यप्रकरणम्	५०.००
५२—श्रीमद्भागवत प्रथम श्लोक	३०.००
५३—गायत्री व्याख्याविवृतिः	१०.००
५४—श्रीहरिनामामृत व्याकरणम्	२५०.००

५५—श्रीकृष्णजन्मतिथिविधिः	३०.००
५६—५७—५८—श्रीहरिभक्तिविलासः	६००.००
५९—काव्यकौस्तुभः	१००.००
६०—श्रीचैतन्यचरितामृत	२५०.००
६१—अलंकार कौस्तुभ	२५०.००
६२—श्रीगौरांगलीलामृतम्	३०.००
६३—शिक्षाष्टकम्	१०.००
६४—संक्षेप हरिनामामृत व्याकरणम्	८०.००
६५—प्रयुक्ताख्यात मंजरी	२०.००
६६—छन्दो कौस्तुभ	५०.००

बंगाक्षर में मुद्रित ग्रन्थ

१—श्रीबलभद्रसहस्रनाम स्तोत्रम्	१०.००
२—दुर्लभसार	१०.००
३—साधकोल्लास	५०.००
४—भक्तिचन्द्रिका	४०.००
५—श्रीराधारससुधानिधि मूल	२०.००
६—श्रीराधारससुधानिधि सानुवाद	३०.००
७—भगवद्भक्तिसार समुच्चय	३०.००
८—भक्तिसर्वस्व	३०.००
९—मनःशिक्षा	३०.००
१०—पदावली	३०.००
११—साधनामृतचन्द्रिका	४०.००
१२—भक्तिसंगीतलहरी	२०.००

सद्ग्रन्थ प्रकाशक एवं मुद्रक :

श्रीगदाधर गौरहरि प्रेस

(श्रीहरिदास निवास)

प्राचीन कालीदह, वृन्दावन (मथुरा)

फोन : 0565–2442098, 2443965



गौशाला

आश्रम के अग्रभाग में एक बृहद् गौशाला है। जिसमें गोवंश की संख्या लगभग 130 है। यहाँ पर गाय की सेवा गाय के अनुकूल रूप में ही की जाती है न कि व्यवसाय की दृष्टि से। गाय श्रीकृष्णजी की भी पूज्य हैं जो कि उनकी भौमलीला से विदित है। उनको आदर्श मानकर ही यहाँ पर गाय की सेव्यरूप में सेवा की जाती है। गो-सेवा के लिए "**श्रीहरिदास गऊ संस्थान**" नामक ट्रस्ट की स्थापना की गयी है तथा तेहरा ग्राम के निकट 11 एकड़ भूमि भी खरीदी गयी है, वहाँ पर एक और नवीन बृहद् गौशाला है। वृद्धावस्था में भी महाराजश्री गो-सेवा स्वयं करते हैं। इस आश्रम का वातावरण प्राचीन समय के ऋषिकुलों जैसा है। आश्रम में एक विराट् ग्रन्थागार भी है जिसमें प्रचुर प्राचीन मुद्रित एवं हस्तलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हैं। आश्रम की एक "प्रेस" भी है जिसका नाम "**श्रीगदाधर गौरहरि प्रेस**" है। इस प्रेस से अभी तक लगभग 80 ग्रन्थों का संस्कृत, हिन्दी एवं बँगला भाषा में प्रकाशन हो चुका है।

मुद्रक :

श्रीगदाधर गौरहरि प्रेस

प्राचीन कालीदह, वृन्दावन (मथुरा) उ.प्र.

फोन : 0565-2442098, 2443965